श्री अरविन्द घोष
कुछ विचारणीय बातें

भावेश मेरजा
(भरुच, गुजरात)

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ५२ अंक ८ वार्षिक मूल्य : बीस रुपये मार्च २००३

सम्पा० **अजयकुमार** आ० सम्पादक : **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ५२ अंक ८ वार्षिक मूल्य : बीस रुपये मार्च २००३

सम्पा० अजयकुमार आ० सम्पादक : स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

श्री अरविन्द घोष के सम्बन्ध में विचारणीय बातें

—भावेश मेरजा

भूमिका :

आधुनिक भारत के महापुरुषों की शृंखला में एक नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है-श्री अरविन्द घोष का । उन्होंने न केवल देश के स्वाधीनता संग्राम में ही अपना सक्रिय सहयोग दिया, बल्कि धर्म, अध्यात्म, साहित्य आदि कई अन्य क्षेत्रों में भी अपना विशेष व महत्त्वपूर्ण प्रभाव छोड़ा है ।

श्री अरविन्द ने आचार्य रामदेव जी के आग्रह पर १९१५-१६ में अर्थात् अपनी मृत्यु के लगभग ३५ वर्ष पूर्व स्वामी दयानन्द के सम्बन्ध में दो निबन्ध अंग्रेजी में लिखे थे । ये अति सुन्दर एवं प्रभावोत्पादक निबन्ध 'वैदिक मैगजीन' में प्रकाशित हुए, और स्वामी दयानन्द के भक्तों को बहुत ही पसन्द आये । स्वामी दयानन्द के जीवन-कार्य के सुप्रसिद्ध व्याख्याता एवम् आर्यसमाज के मूर्धन्य लेखक डॉ० भवानीलाल भारतीय जी ने श्री अरविन्द लिखित स्वामी दयानन्द विषयक इन निबन्धों का मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि "इसमें सर्वत्र संगति, तर्क-प्रवणता, प्रामाणिकता तथा बिवेचना-विश्लेषण की अद्भुत क्षमता दिखाई देती है । श्री अरविन्द ने दयानन्द के विचारों को कितनी सच्चाई और हार्दिकता के साथ आत्मसात् किया था, यह तो इन्हें पढ़कर ही जाना जा सकता है ।" कई लोग कि जिन्होंने केवल इन निबन्धों को ही पढ़ा था वे समझने लगे कि श्री अरविन्द के विचार प्राय: स्वामी दयानन्द के विचारों से अनुकूल ही हैं, और विशेष रूप से उनके वेद-विषयक विचार । फलत: आर्यसमाज के परवर्ती कई लेखकों ने श्री अरविन्द के इन निबन्धों के अभीष्ट उद्धरण स्वामी दयानन्द विषयक अपने ग्रन्थों व लेखों में भूरिश: प्रस्तुत किये हैं ।

इन निबन्धों एवम् उनके उद्धरणों को पढ़कर मुझे श्री अरविन्द के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा हुई । मैंने समय निकालकर उनके The Secret of The Vedas, The Life Divine, The Foundations of Indian Culture, On Yoga, Isha Upanishad, Ken Upanishad, Evening Talks आदि प्रमुख ग्रन्थ एवम् उनके श्री नवजात आदि रचित 'श्री अरविन्द' आदि जीवनचरित्र पढ़ने आरम्भ किये । (श्री नवजात १९५२ से पण्डिचेरी में स्थायी रूप से निवास करते थे । वे श्री अरविन्द सोसायटी तथा ओरोविल के साथ उनके अध्यक्ष के रूप में प्रगाढ़ता से जुड़े रहे । हमने यहाँ कई बातें उनके द्वारा लिखित एवं नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित "श्री अरविन्द" के गुजराती संस्करण के आधार पर ली हैं । इस जीवनचरित्र का प्रकाशन श्री अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी द्वारा भी किया जाता है ।) ऐसा तो नहीं कि मैंने उनका सम्पूर्ण साहित्य पढ़ लिया है, मगर पढ़ने की चाह अवश्य है । श्री अरविन्द ने बहुत सारे ग्रन्थ लिखे हैं, और विभिन्न उपयोगी विषयों पर लिखा है । उनका अंग्रेजी में प्रस्तुत मुद्रित ग्रन्थाकृति साहित्य ३० खण्डों में है । उसमें से कुछ ग्रन्थों की भाषा सरल है, मगर अधिकांश ग्रन्थों में प्रयुक्त की गई उनकी भाषा-शैली पर्याप्त क्लिष्ट भी प्रतीत होती है, जिनको पढ़ते समय सम्भव है कि पाठक के मन में स्वामी दयानन्द द्वारा 'सत्यार्थप्रकाश' के तृतीय समुल्लास में वर्णित आर्ष-अनार्ष शैलीभेद का विचार बार-बार उठे ! फिर भी पिछले लगभग १०-१२ वर्षों के दौरान श्री अरविन्द के जीवन और उनके चिन्तन को ठीक से समझने का मैंने निरन्तर एवं यथासम्भव प्रयास किया है ।

पाठकों को श्री अरविन्द के बारे में कुछ विचार-सामग्री मिले, उनके जीवन तथा दर्शन सम्बन्धित विशेष बातों की ओर आर्य विद्वानों एवं विवेचकों का ध्यान आकृष्ट हो, और आगे वे इस विषय पर अपने मूल्यवान् विचार रख पायें—इस उद्देश्य से यहाँ उनके जीवन एवं सिद्धान्त से सम्बन्धित कुछ अति विचारणीय बातें संक्षेप में प्रस्तुत की जाती हैं । यहाँ उल्लिखित इन सारी बातों पर सम्यक् विचार करने में पाठकों को स्वामी दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट सत्य-असत्य की पाँच कसौटियाँ सर्वाधिक सहायक सिद्ध हो सकती है, जिनका वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है—

"परीक्षा पांच प्रकार की है । इनमें से प्रथम जो ईश्वर, उसके गुण, कर्म, स्वभाव और वेदविद्या; दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, तीसरी सृष्टिक्रम, चौथी आप्तों का व्यवहार और पांचवीं अपने आत्मा की पवित्रता, विद्या । इन पांच परीक्षाओं से सत्याऽसत्य का निर्णय कर के सत्य का ग्रहण और

असत्य का परित्याग करना चाहिये ।" (स०प्र० स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश:)

उक्त परीक्षाओं के उपरान्त पाठक इस बात की भी सम्यक् कल्पना करें कि इस लेख में वर्णित कई बातें अगर स्वामी दयानन्द के समक्ष रखी गई होतीं तो उन पर उनकी क्या समालोचना हो सकती थी ।

स्वामी दयानन्द की मृत्यु १८८३ में हुई, और श्री अरविन्द घोष का जन्म हुआ १८७२ में । स्पष्ट है कि दोनों कभी नहीं मिले । श्री अरविन्द घोष के नाना श्री राजनारायण बोस ब्रह्मसमाज के नेता थे, और १८७४ में जब स्वामी दयानन्द कलकत्ता गये थे तब वे स्वामी जी को मिले थे, और दोनों के बीच विचार-विनिमय भी हुआ था ।

श्री अरविन्द की माता जी स्वर्णलता देवी शिक्षित थीं, और साहित्य सर्जन में अनुराग भी था, मगर हिस्टीरिया एवं मन की अस्थिरता के दर्दों के कारण उनकी प्रतिभा विकसित नहीं हो पाई । (द्र० श्री अरविन्द जीवनरेखा, ले० हरीन्द्र दवे, पृ० ४)

पढ़ाई :

श्री अरविन्द के पिता जी डॉ० कृष्णधन घोष प्रथम भारतीय सिविल सर्जन थे और उन्होंने इंग्लैण्ड में चिकित्सा का उच्च प्रशिक्षण पाया था। वे श्री अरविन्द के शब्दों में 'प्रचण्ड नास्तिक पुरुष' (Tremendous atheist) थे । उनको भारतीयता से तीव्र घृणा थी, और वे नहीं चाहते थे कि अपने बच्चों पर भारतीयता का कोई प्रभाव पड़े । इसलिए उन्होंने अपने बच्चों को आरम्भ से ही पाश्चात्य ढंग की जीवन-प्रणाली में ढालने के भरपूर प्रयास किये । केवल पांच ही वर्ष के श्री अरविन्द की प्रारम्भिक शिक्षा दार्जिलिंग में आयरिस नन्स द्वारा संचालित एक कॉन्वेण्ट स्कूल में हुई । अरविन्द यहाँ दो वर्ष रहे । उन्होंने उस समय के अपने एक अनुभव के बारे में लिखा है कि उनको स्वप्न में एक बड़ा अन्धकार अपने अन्दर आता हुआ दिखाई पड़ता था । यह तमस् उनके ऊपर कई वर्ष तक रहा।

केवल सात ही वर्ष के अरविन्द को आगे की शिक्षा हेतु विलायत भेज दिया गया । वहाँ मान्चेस्टर में उन्हें रेवरण्ड ड्र्युएट नाम के एक पादरी और उनकी पत्नी के संरक्षण में छोड़ दिया गया, और वे उनके साथ लगभग पांच वर्ष रहे, और ईसाई मत के ग्रन्थों के साथ-साथ अंग्रेजी साहित्य के महान् साहित्यकारों से भी उनका परिचय हुआ । उन्होंने वहाँ यूरोप की अंग्रेजी, लेटिन आदि भाषाओं का अध्ययन किया । उस समय ऐसी बात भी चर्चा में आई थी कि अरविन्द को ईसाई बनाया गया है । लन्दन की सेण्ट पॉल स्कूल में तथा कैम्ब्रिज की किंग्ज कॉलिज में अरविन्द का नाम 'अरविन्द एक्रॉइड घोष' के रूप में लिखा गया था ।

यहाँ उन्होंने भारत के लोगों का एक छोटा सा क्रान्तिकारी मण्डल बनाया था, जो भारतीय राजनीति के मॉडरेट नेतृत्व का विरोध करता था। पिता जी की इच्छा श्री अरविन्द को सरकारी अफसर बनाने की थी मगर श्री अरविन्द कुछ और ही चाहते थे । वे आई० सी० एस० की सर्वोच्च परीक्षा में उत्तीर्ण भी हुए । किन्तु फिर भी केवल ट्राइपोस (Tripos=at Cambridge University honours examinations for primary degrees.) की परीक्षा पास कर (और आई० सी० एस० के लिए अयोग्य घोषित होकर ही) लगभग १४ साल विलायत में पढ़कर वे १८९३ में भारत लौट आये।

वे जिस जहाज से स्वदेश आ रहे थे वह रास्ते में समुद्र में डूब गया है, इस प्रकार के किसी कारण से मिथ्या समाचार मिलने से पिता जी आघात सहन नहीं कर पाये और उनका देहान्त हो गया । वे अपने अरविन्द को देख नहीं पाये माता स्वर्णलता देवी ने भी अपने सुपुत्र को बड़ी मुश्किल से पहचाना ।

बड़ौदा में :

विलायत से लौटते ही श्री अरविन्द ने बड़ौदा राज्य की सेवा स्वीकार कर ली । बड़ौदा में वे लगभग १४ साल रहे। बड़ौदा कॉलेज में उन्होंने अंग्रेजी और फ्रेञ्च के प्रोफेसर के रूप में कार्य किया, और १९०४ में वाईस प्रिन्सिपल भी बने । १९०१ में अर्थात् २९ वर्ष की उम्र में उन्होंने मृणालिनी देवी के साथ विवाह कर लिया । मृणालिनी देवी की उम्र उस समय केवल १४ ही वर्ष थी । श्री अरविन्द ने समुद्रयात्रा की थी। अत: उन्होंने एक पुरोहित को अधिक दक्षिणा देकर अपना विवाह संस्कार सम्पन्न कराया । बड़ौदा में श्री अरविन्द संस्कृत, मराठी, गुजराती, बंगला आदि भाषाएँ एवं भारतीय साहित्य के अध्ययन में डूब ही गये । उन्होंने यहाँ उपनिषद्, रामायण, गीता, महाभारत एवं कालिदास, भवभूति आदि के ग्रन्थों का अध्ययन किया । वे घण्टों तक पढ़ते थे, और देश-विदेश के अनेक विषयों के ग्रन्थ पढ़ते थे, देश की स्वाधीनता हेतु वे अब अधिकाधिक सक्रिय होने लगे थे । यहीं रहकर उन्होंने 'इन्दुप्रकाश' में 'न्यू लैम्प फॉर ओल्ड' शीर्षक से अनेक लेख लिखे ।

बड़ौदा से एक बार श्री अरविन्द चाणोद-करनाली गये थे । उस समय के अपने अनुभव को उन्होंने इस प्रकार प्रस्तुत किया-"मेरे यूरोपीय मानस के कारण उस समय मुझे देवों में श्रद्धा नहीं थी । मैं चाणोद के पास करनाली गया था । वहाँ अनेक मन्दिर थे । वहाँ एक काली का मन्दिर है । उसमें रखी हुई मूर्ति की ओर जब मैंने देखा तो मुझे वहाँ जीवन्त उपस्थिति दिखाई दी । मैं पहली ही बार ईश्वर की 'उपस्थिति' में मानता

हुआ।" (श्री अरविन्द, पृ० ४२) श्री अरविन्द ने अब मांसाहार छोड़ दिया था।

१९०१ के वर्ष में श्री अरविन्द के छोटे भाई बारीन भी उनके साथ बड़ौदा में रहते थे। श्री अरविन्द को 'गुह्य' घटनाएँ तब देखने को मिलीं जब बारीन प्लान्चैट के प्रयोग करते थे, और अपने पिता जी डॉ० के० डी० घोष० और रामकृष्ण परमहंस आदि की आत्माओं को बुलाते थे। न केवल बुलाते ही थे, बल्कि उनसे बातें भी करते थे। रामकृष्ण परमहंस की आत्मा आकर बोली-"मन्दिर गड़ो, मन्दिर गड़ो।" अर्थात् मन्दिर खड़ा करो। (वही, पृ० ४४)

बड़ौदा में श्री विष्णु भास्कर लेले नाम के एक महाराष्ट्रीय योगी व्यक्ति ने श्री अरविन्द को केवल तीन ही दिनों में वैसे तो मात्र एक ही दिन में-ब्रह्म का साक्षात्कार करा दिया। (वही, पृ० ४८)

१९०३ में श्री अरविन्द कश्मीर का प्रवास करते हैं। जब वे शंकराचार्य टेकरी (तख्ते सुलेमान) पर गये तो वहाँ उनको अत्यन्त स्पर्शक्षम रूप में नीरव ब्रह्म का अनुभव हुआ। जिसका वर्णन उन्होंने 'अद्वैत' नामक अपने काव्य में किया है। (वही, पृ० ४३)

अलीपुर की जेल में :

बंगभंग का ऐलान होते ही श्री अरविन्द १९०६ में कलकत्ता चले गये, और खुले तौर से क्रान्ति में कूद पड़े। कुछ समय वे कलकत्ता नेशनल कॉलिज के प्रिन्सिपल भी रहे। १९०७ में सूरत कॉन्फ्रेंस के अवसर पर उनकी उपस्थिति अति महत्त्वपूर्ण रही। मगर १९०८ में अलीपुर के बम केस में वे गिरफ्तार कर लिये गये और जेल की कोठरी में बन्द कर दिये गये। वे पूरे एक वर्ष जेल में रहे। श्री अरविन्द ने कहा है कि मैं जब जेल में था तब मेरे अन्दर की आवाज ने मुझे कहा-"मुझे तेरे पास से एक दूसरा काम कराने का है, और इसके लिए मैं तुम्हें यहाँ लाया हूँ। जो तू स्वयं सीख पाने की स्थिति में नहीं है, वह मैं तुम्हें सिखाने, और तुम्हारे कार्य में तुम्हें तालीम देने के लिए मैं तुम्हें यहाँ लाया हूँ।" (वही, पृ० ३८)

जेल से छूटने के तीन ही सप्ताह बाद श्री अरविन्द ने ३० मई १९०९ के दिन कलकत्ता के उत्तर में आये उत्तरपाड़ा में 'धर्म रक्षिणी सभा' के समक्ष अपना एक महत्त्वपूर्ण व्याख्यान अंग्रेजी में दिया, जो बाद में 'उत्तरपाड़ा-व्याख्यान' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस व्याख्यान में उन्होंने जेल में हुए अपने अनुभवों का वर्णन किया और प्रभु की ओर से उन्हें कैसे कैसे आदेश प्राप्त हुए हैं उनकी चर्चा भी की। इस व्याख्यान में

उन्होंने इस बात के संकेत दे ही दिये कि वे अब सक्रिय राजनीति से पृथक् होकर अध्यात्म मार्ग के पथिक होने जा रहे हैं । जेल में हुए अपने अनुभवों का वर्णन करते हुए श्री अरविन्द ने इस व्याख्यान में कहा–"मैंने देखा कि मेरे चारों ओर खड़ी जेल की ऊंची-ऊंची दीवारें ये कोई दीवारें नहीं थीं । ये तो स्वयं वासुदेव मुझे घेरकर खड़े हैं । मेरी कोठरी के आंगन में जो वृक्ष था, उसके नीचे मैं चलता था । मगर वह कोई वृक्ष नहीं था। मैंने देखा कि वह वृक्ष वासुदेव ही है, श्रीकृष्ण स्वयं वहाँ खड़े हैं ।" (वही, पृ० ५०)

श्री अरविन्द ने इस जेल में हुए अपने 'उत्थापन' (levitation) के अनुभव का वर्णन इस प्रकार किया है–"मेरी साधना प्राण की भूमिका पर अति तीव्रता से चल रही थी, और मैं एकाग्रता की स्थिति में था । मेरे मन में प्रश्न होता था कि क्या ये उत्थापन जैसे सिद्धियाँ वास्तव में प्राप्त की जा सकती हैं ? फिर मैंने सहसा अपने आपको ऐसे ऊंचे उठते हुए पाया, जो मैं अपने स्नायुबल से कभी नहीं कर पा सकता था । शरीर का मात्र एक ही भाग जमीन के साथ नाममात्र के सम्पर्क में था, जबकि शेष सारा शरीर दीवार को छूता हुआ ऊंचा ऊठा हुआ था । मैं चाहता होता तो भी मैं सामान्यत: अपने शरीर को इस प्रकार धारण नहीं कर सकता था और मैंने देखा कि शरीर मेरे किसी प्रयत्न के बिना ऐसे ही अधर रहा था ।" (वही, पृ० ५२)

अलीपुर जेल में हुए अपने एक अन्य अनुभव को श्री अरविन्द ने इस प्रकार प्रस्तुत किया–"यह सत्य है कि जेल में मेरी कोठरी में दो सप्ताह तक मैंने विवेकानन्द की आवाज को लगातार मेरे साथ बात करती हुई सुनी थी । और उनकी उपस्थिति अनुभव की थी । यह आवाज आध्यात्मिक अनुभूति के मात्र एक विशेष एवं मर्यादित मगर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्षेत्र के बारे में बोलती थी । और इस विषय में उसे जो कुछ कहना था वह सब कुछ कहने के बाद वह तुरन्त रुक गई ।" (वही, पृ० ५२) पाठकों को याद होगा कि विवेकानन्द की मृत्यु १९०२ में हो चुकी थी, और श्री अरविन्द को यह अनुभूति हुई १९०८-९ में !

पाण्डिचेरी की ओर :

श्री अरविन्द १९०९ में जेल से बाहर आये । वैसे तो वे स्वाधीनता संग्राम में लगभग ७-८ वर्ष ही सक्रिय रहे । जेल से मुक्त होने के बाद वे सोच ही रहे थे कि अब आगे क्या किया जाय ? जुलाई १९०९ में श्री अरविन्द को सिस्टर निवेदिता का एक सन्देश मिला, जिसमें बताया गया था कि सरकार उन्हें पुन: बन्दी बनाना चाहती है । श्री अरविन्द कहते

हैं–"मैंने ऊपर से आती हुई एक आवाज सुनी, 'नहीं, चन्द्रनगर चले जाओ'। जेल में से निकलने के बाद मुझे आवाजें सुनाई देती थीं । उन दिनों मैं इन आवाजों से बिना किसी प्रश्न किये उनका पालन करता था ।" (वही, पृ० ५८) श्री अरविन्द शीघ्र ही चन्द्रनगर पहुँच गये । वे कुछ दिन वहाँ रहे । वहाँ ध्यान करते समय उन्हें ३-४ देवियों के स्वरूप दिखाई देते थे । (वही, पृ० ५९) दूसरा आदेश मिलते ही उन्होंने १ अप्रैल, १९१० के दिन पाण्डिचेरी का रास्ता लिया । पाण्डिचेरी उस समय फ्रान्सीसी उपनिवेश था । वे आजीवन अर्थात् अपने जीवन के अन्तिम लगभग ४० वर्ष यहीं पाण्डिचेरी में ही रहे । पाण्डिचेरी से वे कभी बाहर नहीं गये। ४ अप्रैल, १९१० के दिन शाम के ४ बजे वे यहाँ पहुँचे । इस चार की संख्या का गुह्य अर्थ लिया गया है–'स्थूल में अतिमानस का साक्षात्कार'! ऐसा भी प्रचारित किया गया है कि दक्षिण के किसी नागाई जपता नाम के योगी ने श्री अरविन्द के पाण्डिचेरी-आगमन की भविष्यवाणी बहुत पहले से कर रखी थी । उन्होंने किसी व्यक्ति से कहा था कि 'उत्तर में से एक महायोगी दक्षिण में आश्रय ढूँढता हुआ आयेगा।' श्री रामस्वामी आयंगर को श्री अरविन्द ने सूक्ष्म दर्शन में-जब वह सज्जन उन्हें प्रथम बार मिलने आये उसके पूर्व ही-देख लिया था । (वही, पृ० ६४)

इधर कलकत्ता में अकेली रह गई मृणालिनी देवी १९१० के बाद अपना समय धार्मिक पठन एवं ध्यान आदि में व्यतीत करने लगीं । (श्री अरविन्द और मृणालिनीदेवी को कोई सन्तान नहीं थी ।) श्री रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द के साहित्य में उनकी रुचि हुई, और वे रामकृष्ण मिशन में संन्यास लेना भी चाहती थीं । मगर पाण्डिचेरी में बैठे श्री अरविन्द ने उनके इस विचार को अस्वीकार कर दिया, और कहा कि मृणालिनी देवी को वे स्वयं ही दीक्षा देंगे । मृणालिनी देवी ने अपने पतिदेव के पास पाण्डिचेरी जाने का मन बनाया ही था कि इन्फ्लुएन्झा के कारण १९१८ में केवल ३१ वर्ष की उम्र में ही उनकी मृत्यु हो गई । वे पाण्डिचेरी जा नहीं पाईं । ('परोपकारी', अप्रैल-२०००)

पाण्डिचेरी में श्री अरविन्द ने 'स्वतः लेखन' (Automatic writing) से 'यौगिक साधन' पुस्तक लिखी । बताया गया है कि जिस समय यह पुस्तक लिखी जा रही थी उस समय श्री अरविन्द को एक आकृति दिखलाई देती थी । और वह आकृति राजा राममोहन राय से मेल खाती थी । श्री अरविन्द ने २३ दिन के उपवास भी किये । वे प्रायः एक सफेद धोती ही पहनते थे, जिसका एक हिस्सा दांये कन्धे पर डाल देते थे । शरीर का ऊपर का भाग खुला ही रखते थे । वे यज्ञोपवीत आदि कोई बाह्य

चिह्न धारण नहीं करते थे ।

१२ जुलाई, १९११ को लिखे एक पत्र में श्री अरविन्द ने अपनी आध्यात्मिक शक्तियों के बारे में लिखा है–"अध्यात्म तत्त्व को स्थूल की भूमिका पर ले आने के लिए आवश्यक शक्तियाँ मैं अपने में विकसित कर रहा हूँ । अब मैं दूसरे मनुष्यों में मेरा स्वरूप रख सकता हूँ । उनके अन्दर का अन्धकार हटाकर वहाँ प्रकाश ला सकता हूँ । उनको एक नया हृदय और मन दे सकता हूँ । और उन्हें इस तरह से बदल सकता हूँ यह वस्तु जो लोग मेरे पास रहते हैं उनमें मैं बहुत शीघ्र और सम्पूर्णता से कर सकता हूँ । मगर मुझ से सैकड़ों मील दूर स्थित मनुष्यों में भी यह कार्य मैं सफलतापूर्वकर कर सका हूँ । वैसे तो मैं कई अति महान् शक्तियों के साथ बराबर सम्बन्ध में हूँ ।" (वही, पृ० ६८)

श्री माता जी :

१९१४ में श्री माता जी की श्री अरविन्द से भेंट हुई । उनका मूल नाम था 'श्रीमती मीरा रिशार', और वह फ्रान्स में पैदा हुई थीं । १९१० में उन्होंने 'स्टार ऑफ डॅविड' का एक चित्र श्री अरविन्द को भेजा था। श्री अरविन्द ने जब उसका प्रतीकरूप अर्थ समझाया तब से माता जी को विश्वास हो गया था कि मुझे श्री अरविन्द के साथ ही काम करने का निर्धारित है । (वही, पृ० ६९) प्रथम बार जब वे श्री अरविन्द को मार्च १९१४ में मिलीं । तब वह अपने (दूसरे) पति पोल रिशार के साथ पाण्डिचेरी आई थीं । उस समय उनकी उम्र ३७ वर्ष थी । उम्र में वह श्री अरविन्द से लगभग ६ वर्ष छोटी थीं ।

प्रथम मिलन में ही माता जी ने बताया कि जो एक रूप उन्हें उनकी साधना में मार्गदर्शन करता था और जिसका नाम उन्होंने '**श्रीकृष्ण**' रखा था, वह श्री अरविन्द स्वयं ही थे ! अपने इस प्रथम मिलन में ही माताजी को अनुभूति हो गई कि "अतिमानस पृथ्वी का स्पर्श कर चुका था, और उसका साक्षात्कार होना आरम्भ हो गया था ।" (वही, पृ० ६९) उन्होंने लिखा है–"यह एक साक्षात्कार था और जब तुम जान लेते हो कि प्रभु तुम्हारे सामने हैं तो फिर सन्देह या प्रश्न की बात अन्दर नहीं रह जाती । मैंने पूरी तरह अपने को उनकी दिव्यता के प्रति समर्पित कर दिया । उसके बाद जो कुछ उन्होंने कहा मैंने बिना किसी प्रश्न, सन्देह और हिचकिचाहट के उसे स्वीकार कर लिया ।" (श्री अरविन्द कर्म-धारा, १९९९ । अंक ३ । पृ० १७)

माता जी जब केवल सात ही साल की थीं तब उन्होंने एक १३ साल के शरारती लड़के को जमीन से ऊंचा उठाकर एकदम नीचे पटक

दिया था । बाद में माता जी ने समझाया था कि जिस शक्ति ने उनमें उतर आकर उनको इतना प्रचण्ड बल दिया था, वह महाकाली की शक्ति थी । ......एक बार जंगल में एक ऊंची सीधी टेकरी पर से माता जी नीचे फिसल पड़ीं। नीचे तो काले धारदार पत्थर थे । फिर भी नीचे गिरते समय उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि जैसे कोई उन्हें अपनी गोद में लेकर आधार प्रदान कर रहा है, और उन्हें धीरे-धीरे नीचे ले जा रहा है । जब बिना किसी चोट नीचे पहुंचकर वह खड़ी हो गईं, तो उनके मित्रों को बड़ा आश्चर्य हुआ । (श्री अरविन्द, पृ० ७१) माता जी ने कुछ वर्ष टॅन्जियर्स, अलजीरिया में गुह्य विद्या पढ़ने हेतु बिताये । ११-१३ वर्ष की उम्र में हुए अपने चैतसिक-आध्यात्मिक अनुभवों का वर्णन उन्होंने 'प्रेअर्स एण्ड मेडिटेशन्स' नामक अपनी डायरी में किया है ।

लगभग एक वर्ष से भी कुछ कम पाण्डिचेरी में रहकर वे फ्रांस होकर जापान चली गईं । इस दौरान श्री अरविन्द और उनके बीच पत्रव्यवहार चलता रहा । जापान में वह चार साल रहीं । जापान प्रवास के दौरान फूल-पौधों के प्रति उनकी घनिष्ठता इतनी गहन हो गई कि अपने भोजन के लिए सब्जियां तोड़ते समय कुछ सब्जियां सहसा उन्हें कहने लगती थीं कि 'हमें ले लो, हमें ले लो' । श्री माता जी को कुछ पौधे और फूल बड़ी खुशी से अपने तोड़े जाने की अनुमति देते थे, और कुछ होते थे जो कह उठते-'हमें मत छुओ, हमें मत छुओ' । (श्री अरविन्द कर्म-धारा, १९९९ । अंक ३ । पृ० १६)

२४ अप्रैल १९२० के दिन माता जी स्थायी रूप से पाण्डिचेरी आ गयीं और श्री अरविन्द के कार्यों में सहयोग देने लगीं । (१९३९ के बाद यह २४ अप्रैल का दिन भी 'दर्शन-दिन' के रूप में मनाया जाने लगा।) नवम्बर १९२० में माता जी श्री अरविन्द जहां रहते थे उसी मकान में रहने आ गईं । (श्री माता जी की मृत्यु १९७३ में हुई ।)

'आर्य' का प्रकाशन :

१९१४ में अपने जन्मदिन (१५ अगस्त के दिन) श्री अरविन्द ने 'आर्य' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया । जिसमें एक साथ धारावाहिक छपीं उनकी कृतियां बाद में पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुईं । इस पत्रिका के बारे में श्री अरविन्द ने एक बार कहा-"Arya was written because of Richard. After starting it he went away and left me alone to fill 64 pages per month." (Evening Talks, First Series, 1959, p 274) अर्थात् "आर्य का लेखन रिचर्ड (रिशार) के कारण हुआ था । उसे शुरू करने के बाद वह दूर चले गये, और प्रत्येक मास ६४

पृष्ठ की सामग्री तैयार करने का काम मुझ अकेले पर आ पड़ा ।'' यह मासिक लगभग सात वर्ष चला । १९२१ में उसे बन्द कर दिया गया । बन्द करने का कारण यह बताया गया कि श्री अरविन्द की एकाग्रता अब अपने जीवन के वास्तविक हेतु पर अर्थात् अतिमानस में आरोहण और उसके अवतरण पर ही अधिकाधिक होने लगी थी । और अब ऐसे लेखन के लिए उन्हें समय बहुत कम मिलता था । अन्यथा यह मासिक मुनाफा भी करता था ।

विचित्र प्रसंग :

१९२१ में वत्तेल नामक एक रसोइये को आश्रम से निकाला गया। अत: क्रोधित होकर वह एक मैली विद्या जाननेवाले किसी मुसलमान के पास पहुंचा । इस मुसलमान फकीर ने आश्रम के एक मकान में पत्थर फिंकवाने शुरू किये । इसमें यह पत्थर को एक जगह से अस्थूल कर दूसरी जगह उन्हें फिर स्थूल करने की क्रिया करता था। पुलिस भी बुलाई गई । मगर पुलिस के पैरों के बीच में से एक पत्थर अगम्य प्रकार से सनसनी से निकल गया । पुलिस ने डरकर केस ही छोड़ दिया । इसमें विशेष रूप से मकान में रहनेवाले एक नौकर को निशाना बनाया जाता था । श्री माता जी को इन वस्तुओं का ज्ञान था ही । उन्होंने देखा कि यह जो क्रिया चल रही है वह मकान और नौकर के बीच के किसी सम्बन्ध के आधार पर होती होनी चाहिए । उन्होंने नौकर को अन्यत्र भेज दिया। और सारी घटना बन्द हो गई ।

इतने में वत्तेल रसोइया अति गम्भीर रूप से बीमार पड़ गया। उसकी पत्नी बिलखती हुई श्री अरविन्द के पास आई । और 'इतने में उसे मरने देने की जरूरत नहीं है' ऐसा कहकर श्री अरविन्द ने उदार भाव से माफ कर दिया, और वत्तेल अच्छा हो गया । (श्री अरविन्द, पृ० ७९-८०)

सिद्धि-दिन :

ऐसा लिखा गया है कि आश्रम के साधक १९२६ के आरम्भ से ही एक ऊर्ध्व शक्ति का दबाव अनुभव कर रहे थे । इतने में २४ नवम्बर का दिन आया । शाम का वक्त था । सभी साधकों को बुलाया गया । सब मिलकर कुल २४ साधक थे । २४ नवम्बर का दिन और २४ साधक । इसे भी एक विलक्षणता के रूप में लिया गया । श्री अरविन्द एवं माता जी दोनों बैठे थे । वे जहां बैठे थे उसके पीछे की दीवार पर एक चाईनीज परदा रखा गया था । (बाद में इस परदे को भी सत्य के अवतरण सम्बन्धी चीन में प्रचलित किसी भविष्यवाणी से जोड़ा गया ।) दोनों ने अपने शिष्यों को आशीर्वाद दिये, और एक छोटा-सा ध्यान हुआ।

कुछ समय बाद श्री अरविन्द और माता जी दोनों फिर अन्दर चले गये। इस प्रसंग के बारे में निम्न बातें कहीं गईं–

स्वयं श्री अरविन्द ने कहा–''२४ नवम्बर १९२६ के दिन हुआ कृष्ण का शारीरिक में अवतरण । कृष्ण यह अतिमानस प्रकाश नहीं है। कृष्ण के अवतरण का अर्थ यह होता है कि यह अतिमानस परमात्मा का अवतरण है । वह·····अतिमनस के एवम् आनन्द के अवतरण की तैयारी करता है ।'' (वही, पृ० ८१)

श्री अरविन्द एवं माता जी दोनों के अन्दर पहुंचने के तुरन्त बाद दत्ता (माता जी के साथ आयी आईरीस सन्नारी मिस होटसन) ने उच्च आवाज में कहा–''आज स्थूल भूमिका में भगवान् का अवतरण हुआ है। उन्होंने (श्री अरविन्द ने) जीवन को जीत लिया है । उन्होंने मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली है । उन्होंने सब कुछ प्राप्त कर लिया है । श्री कृष्ण – परमात्मा – का अवतरण हो चुका है ।'' (Breath of Grace, p 85 – अखिल भारत पत्रिका 'अर्पण', पृ० ३१, बड़ौदा, १५ अगस्त १९८४)

अन्तराल में :

इसके बाद अर्थात् नवम्बर १९२६ के बाद श्री अरविन्द ने शीघ्र ही अपने शिष्यों एवं मिलने आने वालों के साथ अपना सम्पर्क बन्द कर दिया, और स्वयं वहीं एकान्तवास में चले गये । मगर पत्रों के माध्यम से अपने साधकों का मार्गदर्शन करते रहे । आश्रम की पूरी व्यवस्था माता जी को सौंप गये । डॉ० नीरदवरण और श्री चम्पकलाल आदि ४–५ सन्निष्ठ साधक लोग श्री माता जी के निर्देशन में श्री अरविन्द की भोजन आदि दैनिक आवश्यकताओं की व्यवस्था करते थे । नवम्बर १९२६ से लेकर अपनी मृत्यु पर्यन्त अर्थात् ५ दिसम्बर १९५० तक अर्थात् अपने जीवन के अन्तिम २४ वर्ष श्री अरविन्द एक छोटे-से कमरे में ही रहे । उससे वे बाहर ही नहीं निकले । अपने शिष्यों को कह दिया कि वे लोग आज के बाद माता जी से ही प्रकाश और शक्ति प्राप्त कर लिया करें । अपनी आध्यात्मिक प्रगति के लिए वे लोग माता जी से ही मार्गदर्शन लिया करें। नवम्बर १९२६ के बाद श्री अरविन्द वर्ष में केवल तीन ही बार 'दर्शन' देते थे–

(१) माता जी के जन्मदिन २१ फरवरी के दिन,

(२) अपने जन्मदिन १५ अगस्त के दिन और,

(३) सिद्धि-दिन २४ नवम्बर के दिन ।

१९३९ के बाद २४ अप्रैल के दिन भी दर्शन देते थे । क्योंकि माता जी अन्तिम बार पाण्डिचेरी २४ अप्रैल के दिन आयी थीं । ये चारों

दिन 'दर्शन दिन' कहलाते हैं। लोग चाहते थे कि श्री अरविन्द कम से कम महीने में एक बार तो 'दर्शन' देवें। मगर लोगों की यह प्रार्थना जब उन तक पहुंचाई गई तो उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। और उत्तर में लिखा कि "अगर मैं महीने में एक बार बाहर आऊं तो मेरे बाहर आने का असर तीन गुना कम हो जाएगा।" (श्री अरविन्द, पृ० ८३) वर्षों तक श्री अरविन्द के अन्तेवासी के रूप में रहनेवाले श्री नीरदवरण के अनुसार इन अन्तराल के वर्षों में भी श्री अरविन्द प्रतिदिन ८-९ घण्टे अपने शिष्यों के प्रश्नों के उत्तर लिखने में लगाते थे। (When in 1927-1938 he was living in seclusion, he used to write answers to his disciples' questions for 8-9 hours at night and early morning, keeping himself in this way in contacty with them." (Ref. : Sri Aurobindo स्वदेशागमन Centenary Souvenir, p-39)

१२ वर्ष के इसी प्रकार के एकान्तवास के बाद २४ नवम्बर १९३८ के दिन रात के लगभग दो बजे श्री अरविन्द अपने कमरे में फिसलकर गिर पड़े, और उनके घुटने में गम्भीर चोट आयी। २४ नवम्बर 'दर्शन दिन' था। मगर दर्शन बन्द रखने पड़े। इस दुर्घटना के कारण कुछ डॉक्टर एवं शिष्यों को श्री अरविन्द की सेवा करने का अवसर मिल गया। श्री अरविन्द ने इस फिसलकर गिर पड़ने की घटना को इस प्रकार रखा—"विरोधी शक्तियों ने कई बार दर्शन जैसी वस्तुओं को रोकने के प्रयत्न किये हैं। मगर उनके सभी हमलों को फेंक देने में मैं सफल रहा हूं। मेरे पैर को जब अकस्मात् हुआ तब मैं श्री माता जी की रक्षा करने में लीन था, और स्वयं अपने बारे में मैं भूल गया था। मैंने ऐसा नहीं सोचा था कि विरोधी शक्तियां मेरे ऊपर हमला कर देंगी। वह मेरी भूल थी।" (श्री अरविन्द, पृ० ८३)

द्वितीय विश्वयुद्ध में श्री अरविन्द की भूमिका :

१९३९ से लेकर १९४५ तक द्वितीय विश्वयुद्ध चला। श्री अरविन्द इसी दौरान यहीं पर पाण्डिचेरी में अपने कमरे में ही थे। फिर भी उन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध का नियन्त्रण किया। कैसे?

श्री अरविन्द ने घोषणा की—"माता जी जिस कार्य के लिए इस धरती पर आई हैं, उसकी सफलता के लिए हिटलर और साथी बाधक हैं, इसलिए यह युद्ध माता जी का युद्ध है।" श्री अरविन्द ने बताया कि हिटलर आसुरी शक्ति का प्रतिनिधि है, जबकि मित्रराष्ट्र दैवी शक्ति के पक्ष में युद्ध कर रहे हैं। इसलिए उनकी सहायता आवश्यक है। अस्तु श्री अरविन्द और श्री माता जी ने इस विषय पर खुलकर संयुक्त रूप से

ब्रिटिश और फ्रेंच सरकार को पत्र लिखा, आर्थिक सहायता भेजी, अपने आश्रम के कुछ साधकों को सेना में भर्ती भी कराया और अपनी यौगिक शक्ति का प्रयोग मित्र राष्ट्रों के पक्ष में किया ।......श्री अरविन्द ने इस युद्ध में गहरी रुचि ली और बड़ी सुबह से रात तक रेडियो से युद्ध की खबर लेते रहे । सान्ध्यवार्ता के शिष्यों का कहना है कि जब उन्हें १५ अगस्त १९४४ के दिन इंग्लैण्ड को विजित करने और लन्दन के राजमहल से भाषण देने का हिटलर का संकल्प बताया गया, तब श्री अरविन्द मुस्कुराये। उन्होंने अपनी सारी यौगिक शक्ति हिटलर के विरुद्ध लगा दी और ठीक उसी दिन से हिटलर की करारी हार प्रारम्भ हुई । वह (१५ अगस्त) श्री अरविन्द का जन्म दिवस था । इसी तरह १५ अगस्त १९४५ को उन्हीं के जन्मदिवस पर जापान ने अपने हथियार डाल दिये, और इस तरह इस क्रूरतम विश्व युद्ध का अन्त हुआ । (श्री अरविन्द क्यों ? ले० ज्ञानचन्द्र, पृ० ३८)

१३ मार्च १९४४ के दिन श्री अरविन्द ने अपने एक शिष्य को लिखा–"निश्चित रूप से मेरी शक्ति केवल आश्रम और उसकी परिस्थिति में ही मर्यादित नहीं है । आप जानते हो कि युद्ध को सही दिशा में विकास प्रदान करने में सहायता देने में एवं मानव जगत् में परिवर्तन लाने में यह भारी मात्रा में खर्च हो रही है ।" (श्री अरविन्द, पृ० ८४) श्री अरविन्द ने कहा–"स्पेन में मैं भव्यता से सफल रहा था । जनरल मियाका एक ऐसा मजा का कारण था कि जिसके ऊपर काम किया जा सकता था ।......आयरलैण्ड में मैंने बिल्कुल वही किया, जो मैं बंगाल में करना चाहता था ।" एक अन्य प्रसंग में श्री अरविन्द ने कहा–"अगर मैं ऐसा कहूं कि रशियन क्रान्ति की सफलता के लिए मैंने तीन वर्ष तक कार्य किया था, तो वह बात हँसने जैसी और अभिमान युक्त भी लग सकती है । उसे सफल करने के लिए काम करने वाली प्रभावक असरों में एक मैं था ।" (वही, पृ० ८७)

उन दिनों श्री अरविन्द आश्रम में माता जी सूप या अन्य कोई वस्तु बांटते हुए एकाएक समाधि में चली जाती थीं और शिष्यों को एक एक घण्टे तक इन्तजार करना पड़ता था । जब वे सामान्य चेतना में आती थीं तो कहती थीं कि उन्हें बुलाया गया था । पूरे युद्ध के दौरान उन्हें लगता था जैसे उनके सिर पर टेलीफोन एक्सचेंज स्थापित हो । ......श्री माता जी ने मागी लीडची ग्रासी को बताया था कि श्री अरविन्द किस तरह चर्चिल के मुख में अपनी बात रखते थे जिसे वह अपने सन्देशों और भाषणों में व्यक्त करते थे । (श्री अरविन्द कर्मधारा, १९९९, अंक ३,

पृ० ४४)

श्री अरविन्द ने इस युद्ध के दौरान सिल्वू केसिनस नाम के एक कैदी की एक ऋषि के रूप में अन्तर्दर्शन देकर सहायता की। एक अन्य आयरिश-अमेरिकन सैनिक जान कैली को श्री अरविन्द ने 'ग्रेट सर' के रूप में, और श्री माता जी ने 'हेवेन लेडी' (स्वर्गीय महिला) के रूप में अन्तर्दर्शन देकर सहायता की । ......श्री माता जी ने श्री उदार पिण्टो को बतलाया था कि हिटलर को रूस पर आक्रमण करने के लिए उन्होंने उकसाया था । श्री माँ ने बतलाया था कि इंग्लैण्ड जर्मन की बमवारी से काफी ध्वस्त हो चुका था तब एक रात को हिटलर का प्रेरक असुर श्री माता जी के पास आया और अपनी शेखी बघारने लगा कि 'अब वह इंग्लैण्ड को अपने पैरों तले रौंद डालेगा ।' इस पर माँ ने कहा कि अब तुम देखोगे कि मैं तुम्हारे ऊपर वही चाल चलूंगी जो तुम हमारे साथ चलते हो । मैं तुम्हारे ही यन्त्रों को एक दूसरे के विरुद्ध लड़ाने का उपयोग करूंगी और उन्हें समाप्त कर दूंगी । ......इस तरह श्री अरविन्द और श्री माँ ने संसार को एक महान् विनाश से बचा लिया । (वही, पृ० ४५)

१५ अगस्त :

श्री अरविन्द का जन्म १५ अगस्त के दिन हुआ था । और देश को स्वतन्त्रता भी उसी दिन मिली । श्री अरविन्द ने १५ अगस्त के दिन का आध्यात्मिक अर्थ इस प्रकार समझाया–"१५ अगस्त यह कुमारिका मेरी के स्वर्ग में हुए सत्कार का दिन है । इसका अर्थ यह होता है कि स्थूल प्रकृति दिव्य प्रकृति तक ऊपर ले जायी जाती है । कुमारिका मेरी प्रकृति का अर्थ सूचित करती है । ईसु मानव में जन्मा हुआ दिव्य आत्मा है । वह प्रभु का पुत्र है । एवं मानव का भी पुत्र है ।" (श्री अरविन्द, पृ० १)

१५ अगस्त १९४७ के दिन जब देश स्वतन्त्र हुआ तो त्रिचिनोपल्ली रेडियो से श्री अरविन्द का सन्देश प्रसारित किया गया। उस सन्देश में श्री अरविन्द ने कहा–"१५ अगस्त मेरा जन्म दिन है। यह दिन ऐसा महान् गौरव प्राप्त करता है यह मेरे लिए स्वाभाविक रूप में एक बड़ी आनन्दप्रद घटना है । मैं इस सुयोग को केवल एक आकस्मिक संयोग के रूप में नहीं देखता हूं । बल्कि मैंने अपने जीवन के आरम्भकाल से जिस कार्य को अपने हाथ में लिया था, और जिस कार्य में प्रभु की दिव्य शक्ति कदम कदम पर मेरा मार्गदर्शन कर रही थी उसी दिव्य शक्ति ने मेरे इस कार्य पर इस सुयोग के द्वारा अपनी सम्पूर्ण अनुमतिसूचक मुहर लगाई है। इस सुयोग में मैं मेरे जीवनकार्य को पूर्ण सिद्धि की दिशा में गति करता

हुआ देख रहा हूं ।'' (वही, पृ० ८७-८८)

मृत्यु और समाधि :

५ दिसम्बर, १९५० के दिन श्री अरविन्द का रात के लगभग डेढ़ बजे देहावसान हो गया । वे मूत्रकृच्छ्र से पीड़ित थे । वे ७८ वर्ष जीये। अन्तिम दिन का वर्णन करते हुए श्री नीरदवरण ने लिखा है कि श्री अरविन्द उस दिन बार बार आगे झुककर अपने बिछौने के पास बैठे अपने सेवक श्री चम्पकलाल को अपनी बांहों में लेकर उनके गाल को चूम लेते थे। (द्र० अखिल भारत पत्रिका 'अर्पण' बड़ौदा, १५ अगस्त १९८४, पृ० २६) लिखा गया है कि मृत्यु के बाद एक सौ ग्यारह घण्टे तक उनका शरीर प्रकाश से देदीप्यमान रहा । और उसे 'अतिमानस प्रकाश की एकाग्रता से सभर' बताया गया । उनकी मृत्यु का कारण यह बतलाया गया कि 'अतिमनस को बिलकुल स्थूल पर्यन्त नीचे ले आने के लिए' श्री अरविन्द ने यह किया । ९ दिसम्बर को 'प्रकाश' शरीर में से विदा होने लगा । शव की वैदिक पद्धति से अन्त्येष्टि न कर उसे वहीं आश्रम के चौक में खड़े एक वृक्ष के नीचे दफना दिया गया अर्थात् समाधि दी गई । (ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवत: श्री अरविन्द ने अपने शव का क्या किया जाय उस सम्बन्ध में कोई निर्देश नहीं दिया था, और उसे समाधि देने का यह निर्णय श्री माता जी ने ही लिया ।) यही समाधि अब साधकों के लिए ध्यान का प्रसिद्ध स्थान बन गई है । (श्री अरविन्द, पृ० ९०-९१)

इस विषय में श्री माता जी ने बताया–''मैंने जब उनको वापस अपने शरीर में आने को कहा तो उन्होंने स्पष्ट उत्तर दिया कि, 'मैंने शरीर हेतुपूर्वक छोड़ा है । मैं उसे फिर धारण करनेवाला नहीं हूं । मैं पुन: अतिमानस प्रकार से बंधे प्रथम अतिमानस शरीर में आविर्भाव पाऊंगा ।' हम उनके सान्निध्य में खड़े हैं । रूपान्तर के अपने कार्य को और अधिक सम्पूर्ण रूप से मदद करने के लिए उन्होंने अपने शारीरिक जीवन का बलिदान दिया है ।'' (वही, पृ० ९१) श्री माता जी ने फिर कहा–''एकाध वर्ष पहले बातचीत के दौरान मैंने श्री अरविन्द से कहा था कि मुझे ऐसा लगता है कि मैं अपना यह शरीर छोड़ दूं । और वे अत्यन्त दृढ़तापूर्वक बोले कि, नहीं नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता । इस रूपान्तर के लिए अगर आवश्यकता पड़ी तो मैं जाऊंगा । अतिमानस के अवतरण और रूपान्तर के हमारे योग को आपको पार लगाना है ।'' (वही, पृ० ९१)

श्री अरविन्द मृत्यु के बाद कहां गये ? श्री माता जी ने इस विषय में कहा है–''श्री अरविन्द का सूक्ष्म शारीरिक में पृथ्वी के नजदीक के प्रदेश में एक स्थायी निवासस्थान है । जो भी उन्हें देखना चाहे वे सब

उस प्रदेश में जा सकते हैं, और मिल सकते हैं। वहां सूक्ष्म शारीरिक में उनका स्वरूप पृथ्वी पर था उसे मिलता ही स्वरूप है । मगर उसमें अमृतत्व की भव्य शान्ति है ।'' (वही, पृ० ९२)

श्री अरविन्द ही ईश्वर :

आज से लगभग १२ वर्ष पूर्व की बात है । मैं श्री अरविन्द के जीवन-कार्य के एक सुपठित आन्तरराष्ट्रीय व्याख्याता के प्रवचन सुनने गया । अपने प्रत्येक प्रवचन के आरम्भ में वे वहीं पर खास तौर से रखी गई श्री अरविन्द और श्री माता जी की फोटो को लक्ष्य करके इस प्रकार से सम्बोधन करते थे–'' श्री अरविन्द ! श्री माता जी ! उपस्थित श्रोतागण. ......आदि'' । मुझे आश्चर्य हुआ । मैंने जिज्ञासा की तो उन्होंने उत्तर में कहा कि, मैं यहां पर श्री अरविन्द एवं श्री माता जी दोनों ही को उपस्थित देखता हूं । मैंने पूछा कि यह कैसे सम्भव है ? उन दोनों का तो देहान्त हो चुका है, फिर उनकी उपस्थिति कैसे ? इस पर प्रवचनकर्ता ने उत्तर में कहा कि, जैसे मीरा और नरसिंह मेहता को भगवान् 'दर्शन' देते थे, वैसे ही ! यह उत्तर सुनकर मुझे ऐसा लगा कि श्री अरविन्द को सूक्ष्मता एवं सावधानी से पढ़ना होगा। ऐसी बातों का मूल क्या हो सकता है ? इस सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यातव्य हैं–

* श्री अरविन्द ने अवतारवाद का कहीं पर भी खण्डन नहीं किया है । उन्होंने अपने ग्रन्थों में उसकी अभिनव व्याख्या और समर्थन ही किया है । वे अवतारवाद से अपने को पृथक् नहीं रख पाये । स्वामी दयानन्द ने अवतारवाद के खण्डन में एक यह तर्क भी प्रस्तुत किया है कि 'जो ईश्वर सर्वव्यापक और अनन्त है, वह मानव शरीर में अवतार लेकर एकदेशी कैसे हो सकता है ?' श्री अरविन्द ने अपने ग्रन्थों में इस प्रकार के तर्कों के समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया है । (द्र० On Yoga, Book Two, Tome One, 1958, p. 245) इस सम्बन्ध में 'दयानन्दसन्देश' के फरवरी २००१ के अंक में प्रकाशित श्री ब्र० विवेकभूषण जी दर्शनाचार्य द्वारा की गई श्री अरविन्द के तत्सम्बन्धी विचारों की समालोचना पठनीय है ।

* प्रश्न (किसी भक्त का) : मेरी ऐसी दृढ़ श्रद्धा है कि आप दिव्य प्रभु के अवतार हो । क्या मैं ठीक हूं ?

उत्तर (श्री अरविन्द का) : आपकी श्रद्धा को अनुसरते रहो । वह आपको गलत रास्ते ले जायेगी ऐसा सम्भव नहीं है ।

(१२ अगस्त १९३५)–(अखिल भारत पत्रिका 'अर्पण' पृ० ४, बड़ौदा, १५ अगस्त १९८४)

* श्री अरविन्द ने महेश को कहा कि ''मुझ में और श्रीकृष्ण में कोई भेद नहीं है ।'' –(Champaklal Speaks, p. 12), (वही, पृ० २२)

* श्री अरविन्द के सान्निध्य में आश्रम में १२ वर्ष रहनेवाले श्री नीरदवरण ने लिखा है–"I have had the firm conviction that He was not a human being; He was the one who had taken up a human body : manushim tanum ashritam." अर्थात् मेरा दृढ़ विश्वास है कि श्री अरविन्द मनुष्य नहीं थे । उन्होंने मनुष्य शरीर स्वेच्छा से धारण किया था–मानुषीं तनुम् आश्रितम् । (Sri Aurobindo स्वदेशागमन Centenary Souvenir, p. 38) श्री अरविन्द कहते थे–"I have nothing human in me." अर्थात् मुझ में कुछ भी मानवीय नहीं है । (वही, पृ० ३९)

* श्रीमाता जी के श्री अरविन्द के बारे में कुछ प्रसिद्ध कथन इस प्रकार हैं–(१) ''विश्व-इतिहास में श्री अरविन्द जिस सत्य का प्रतिनिधित्व करते हैं वह कोई शिक्षा-ज्ञान नहीं है, न कोई नव-उद्घाटन ही है । यह तो परमोच्च तत्त्व की एक सीधी क्रियात्मकता है ।'' (२) ''पृथ्वी के इतिहास के आरम्भ काल से लेकर आज पर्यन्त पार्थिवता के रूपान्तर की जो महान् घटनाएं घटी हैं, उन सभी घटनाओं में श्री अरविन्द एक या दूसरे रूप में, एक या दूसरे नाम से अध्यक्ष पद पर आरूढ़ रहे हैं ।'' (३) ''श्री अरविन्द परब्रह्म के शाश्वत अवतार हैं । जैसे श्रीकृष्ण हैं वैसे ही ।)'' (द्र० अखिल भारत पत्रिका 'अर्पण' बड़ौदा, १५ अगस्त १९८४, पृ० १, २)

* श्री माता जी के सम्बन्ध में श्री अरविन्द का विधान–"The Mother's consciousness and mine are the same, the one consciousness in two, because that is necessary for the play." अर्थात् ''श्री माता जी की चेतना और मेरी चेतना दोनों एक ही हैं । एक ही दिव्य चेतना के दो रूप हैं । क्योंकि जगत् की लीला के लिए वह आवश्यक है ।''

* साधु वनमालादास ने ''श्री अरविन्द वहीं गोविन्द, फिर भारत में आये हैं ।'' इस प्रकार का एक भजन तैयार कर उसके अंग्रेजी अनुवाद के साथ श्री अरविन्द के पास भेजा था, और साथ में एक प्रश्न भी पूछा था कि "Am I right in my conviction ?" अर्थात् क्या मेरी मान्यता ठीक है ? श्री अरविन्द का उत्तर था 'Yes' अर्थात् आपकी मान्यता ठीक है । फिर तो वह सज्जन सभी को यह बात कहते रहते थे कि उन्होंने स्वयं श्री अरविन्द से यह बात कबूल करवाई है कि वे अर्थात् श्री अरविन्द

स्वयं श्रीकृष्ण हैं। (अखिल भारत पत्रिका 'अर्पण' पृ० ४३, बड़ौदा, १५ अगस्त, १९८४)

वेद के बारे में :

श्री अरविन्द ने किसी वेदज्ञ गुरु के पास बैठकर आर्ष परम्परा से वैदिक शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया था। उन्होंने अपने प्रगाढ़ स्वाध्याय के बल पर ही स्वतन्त्र दृष्टि से इन शास्त्रों को पढ़ा था। अत: वेद-व्याख्या-प्रसंग में उन्होंने आर्ष परम्परागत बातें न कहकर एक प्रकार से अपनी 'दिव्य जीवन' की दार्शनिक विचारधारा को प्रश्रय देनेवाली मनोवैज्ञानिक बातें ही रखी हैं। उनके वेद सम्बन्धी ग्रन्थ दुरूह होते हुए भी पठनीय अवश्य हैं। क्योंकि उनका वेदप्रेम, वैदिक भाषा के स्वरूप को समझने में उनके द्वारा प्रयुक्त गम्भीर तुलनात्मक भाषाशास्त्रीय विवेचना, सत्यम्, ऋतं, बृहद्, घृतम्, गो, कविक्रतु आदि वैदिक शब्दों के निर्वचनों का उनका निराला ढंग, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, वेदों को दिव्य ज्ञान के भण्डार सिद्ध करनेवाली उनकी वर्णन शैली, ये सब बातें प्रत्येक पाठक को किसी न किसी रूप से लाभान्वित कर सकें ऐसी हैं।

उन्होंने एक ओर जहां सायणाचार्य एवं यूरोपीय वेदभाष्यकारों की विस्तृत आलोचना की है, वहां दूसरी ओर १९१५-१६ में लिखे दयानन्द विषयक अपने निबन्ध में, तथा अपने 'वेदरहस्य' ग्रन्थ के आरम्भ में स्वामी दयानन्द के भाष्य की प्रशंसा भी की है। (यह ग्रन्थ प्रथम १९१४-१९२० में 'आर्य' मासिक में प्रकाशित हुआ था। उसका हिन्दी अनुवाद 'वेदरहस्य' श्री अभयदेव जी ने किया था) मगर आगे चलकर उन्होंने अपने वेदव्याख्या ग्रन्थों में या अन्य ग्रन्थों में दयानन्दभाष्य को कहीं पर भी प्रमाण रूप में, उसके कोई विशेष सन्दर्भ आदि देकर उद्धृत नहीं किया। 'श्री अरविन्द आन द वेद' कि जिसका हिन्दी संस्करण हाल ही में 'वेदों की प्रासंगिकता' के नाम से श्री अरविन्द चेतना समाज (दिल्ली) की ओर से प्रकाशित किया गया है, उसमें भी उन्होंने शंकर, बुद्ध, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द आदि का तो नामोल्लेख किया है, मगर स्वामी दयानन्द का कोई उल्लेख ही नहीं है। **न केवल इतना ही, बल्कि उन्होंने कहीं कहीं तो स्वामी जी के वेद सम्बन्धी विचारों की आलोचना भी की है। जैसे कि 'वेदरहस्य' के तीसरे प्रकरण में ही कि जहां पर उन्होंने स्वामी जी के लिए प्रशंसात्मक बातें लिखी हैं, वहां आगे उसी 'Modern Theories'** प्रकरण में वे दयानन्दीय विशुद्ध एकेश्वरवादी दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए लिखते हैं कि ऐसे (स्वामी दयानन्द के एकेश्वरवादी) सिद्धान्त को स्थापित करना स्पष्टत: मुश्किल है। और श्री अरविन्द वेद में एकेश्वरवाद के साथ साथ एकात्मवाद,

अनेकात्मवाद, बहुदेवतावाद आदि आदि का सह अस्तित्व प्रतिपादित करने लगते हैं । उन्होंने लिखा है–

"Such a theory is, obviously, difficult to establish. The Rigveda itself, asserts (Rv. I. 164.46) that the gods are only different names and expressions of one universal Being who in His own reality transcends the universe; but from the language of the hymns we are compelled to perceive in the gods not only different names, but also different forms, powers and personalities of the one Deva. The monotheism of the Veda includes in itself also the monistic, pantheistic and even polytheistic views of the cosmos and is by no means the trenchant and simple creed of modern Theism. It is only by a violent struggle with the text that we can force on it a less complex aspect." (The Secret of the Veda, pp. 29-30)

उन्होंने **व्युत्पत्तिशास्त्र की प्रामाणिकता को लेकर महर्षि यास्क पर भी प्रहार किया है ।** ("But Yaska the etymologist does not rank with Yaska the lexocographer. Scientific grammar was first developed by Indian learning, but the beginnings of sound philology we owe to modern research. Nothing can be more fanciful and lawless than the methods of mere ingenuity used by the old etymologists down even to the nineteenth century, whether in Europe or India. And when Yaska follows these methods, we are obliged to part company with him entirely. Nor in his interpretation of particular texts is he more convincing than the later erudition of Sayana." --The Secret of the Vedas, p. 17).

उनके **वेद विषयक ग्रन्थों को देखने से प्राय: ऐसा ही प्रतीत होता है कि वे वेदों को ईश्वरीय कृति नहीं मानते हैं, बल्कि ऋषियों द्वारा रचित मानते हैं ।** वेदों की भाषा तथा मन्त्रगत शब्दों की चर्चा में वे प्राय: ऐसी ही बातें लिखते हैं कि जैसे वेद उनकी दृष्टि में ऋषियों की ही रचना है । वैसे तो 'वेदरहस्य' ग्रन्थ के दूसरे प्रकरण में एक जगह उन्होंने वेद को ईश्वरीय ज्ञान लिखा है । फिर भी जैसा स्पष्ट स्वामी दयानन्द ने लिखा है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं, प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर सनातन जीवों के कल्याण हेतु वेदों का प्रकाश चार आदि ऋषियों के अन्त:करण में करता है, इस प्रकार की साफ बातें हमें श्री अरविन्द के साहित्य में स्पष्ट रूप से कहीं पर भी पढ़ने को नहीं मिलीं । अपने बड़ौदा काल से ही वेदप्रेमी रहते हुए, और पर्याप्त समय, सुविधा, साथी-सहयोगी आदि उपलब्ध होते हुए भी श्री अरविन्द अपने जीवन में ऋग्वेद के कुछ ही अंशों की व्याख्या प्रस्तुत कर सके । वे अन्य वेदों पर कोई विशेष साहित्य नहीं दे पाये।

हाँ, वे जीवन भर अपना महाकाव्य 'सावित्री' जरूर लिखते रहे, जिसे अंग्रेजी साहित्य का सब से विशाल काव्यग्रन्थ कहा जाता है। (इसमें २४००० पंक्तियां, ४९ सर्ग और १२ पर्व हैं। यह महाभारत में वर्णित सावित्री-सत्यवान् के आख्यान के प्रतीकार्थों पर आधारित है।)

दार्शनिक मान्यताएँ :

श्री अरविन्द की दार्शनिक मान्यताएँ भी कुछ कम विचित्र नहीं हैं। एक बात तो स्पष्ट है कि उनकी विचारधारा ईश्वर-जीव-प्रकृति के त्रैतवाद से कतई मेल नहीं खाती हैं। वे शांकर मत (मायावाद) के भी आलोचक थे। और कपिल, कणाद आदि वैदिक दर्शनकारों को भी वे कोई विशेष महत्त्व प्रदान करते नहीं दिखते। 'The Life Divine' के पृ० ८३-८४ पर दर्शनशास्त्रों की तर्क-प्रणाली की आलोचना की गई है।

ईश्वर को सर्वोच्च सत्ता मानते हुए भी वे उसे विकासशील-विकास के पथ पर अग्रसर (Evolving-Unfolding) वर्णन करते हैं। वे ब्रह्म के अवतरण-आरोहण तथा 'दिव्य जीवन' का अपना दार्शनिक सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं। उनकी दृष्टि में जड़ तथा चेतन मूल रूप में एक ही हैं। सृष्टिरचना का प्रयोजन जो उन्होंने बताया है वह जीव की पृथक् सत्ता को माने बिना गले नहीं उतरता। सर्वव्यापक, निराकार, निर्विकार, कूटस्थ ब्रह्म क्यों और कैसे अपने आपको अव्यक्त से व्यक्त और फिर व्यक्त से अव्यक्त में बारी बारी से प्रकट करता रहेगा ?

जहां तक मैं समझ पाया हूं श्री अरविन्द एक प्रकार से अद्वैतवादी ही थे। उन्होंने स्वयं लिखा है—"The philosophy of Th Life Divine is such a realistic Adwaita." (On Yoga, Book Two, Tome One, 1958, p. 45) अर्थात् 'दिव्य जीवन' का दर्शन वास्तविक अद्वैत का दर्शन है। क्योंकि जीव एवं प्रकृति को वे अन्ततः ब्रह्म ही प्रतिपादित करते हैं। नवीन वेदान्ती लोग प्रकृति को माया मानते हैं मिथ्या मानते हैं, स्वप्नवत् मानते हैं। परन्तु श्री अरविन्द प्रकृति को भ्रान्ति या स्वप्न नहीं मानते। उनका कहना है कि प्रकृति 'ब्रह्म' का ही व्यक्त रूप है, ब्रह्म का ही जड़ में प्रकट रूप है, परन्तु है यह यथार्थ। अयथार्थ, मिथ्या या भ्रान्ति नहीं है। यहां श्री अरविन्द के कुछ वाक्य दिये जाते हैं, ताकि उनके दार्शनिक मन्तव्यों का परिचय मिले—

* 'दिव्य जीवन' के ब्रह्म, पुरुष, ईश्वर' प्रकरण में सांख्य के पुरुष-प्रकृति सिद्धान्त की आलोचना की गई है, और लिखा गया है— "All these positions of the Sankhya we find to be perfectly valid in experience when we come into contact with the realities of indi-

vidual soul and universal Nature. but they are pragmatic truths and we are not bound to accept them as the whole or the fundamental truth either of self or of Nature." (The Life Divine, p. 415) यहां कहा गया है कि सांख्य की बातें केवल व्यावहारिक रूप में ही सत्य हैं, उन्हें अन्तिम या मूलभूत सत्यों के रूप में मान्य करने की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकरण में आगे वे लिखते हैं–"but there is no eternal and fundamental separateness and dualism of Being and its Consciousness-Force, of the Soul and Nature." (p. 416) यहां आत्मा एवं प्रकृति का अद्वैत बताया गया है।

* ब्रह्म के सिवाय अन्य कुछ भी अस्तित्ववान् नहीं है, एकमात्र ब्रह्म ही सत्तात्मक तत्त्व है, यह बताने के लिए श्री अरविन्द लिखते हैं– "Brahman is the Alpha and the Omega. Brahman is the One besides whom there is nothing else existent." (The Life Divine, p. 41)

* अपने अद्वैतवाद के बारे में श्री अरविन्द 'दिव्य जीवन' में लिखते हैं–"The real Monism, the true Adwaita, is that which admits all things as the one Brahman and does not seek to bisect Its existence into two incompatible entities, an eternal truth and eternal falsehood, Brahman and not-Brahman, Self and not-self, a real Self and an unreal, yet perpectual Maya. If it be true that the Self alone exists, it must be also true that all is the Self." (The Life Divine, p. 38) अर्थात् सच्चा अद्वैतवाद वह है जो समस्त वस्तुओं को एक ही ब्रह्म के रूप में स्वीकार करता है, और ब्रह्म और अब्रह्म, आत्मा और अनात्मा, एक सच्चा आत्मन् और एक मिथ्या, फिर भी चिरंतन माया, इन रूपों में विभक्त नहीं करता। यदि यह सत्य है कि एकमात्र आत्मा का ही अस्तित्व है तो यह भी सत्य होना चाहिए कि सब कुछ आत्मा है।

* The Life Divine के 'God, Man and Nature' प्रकरण में भी ईश्वर–जीव–प्रकृति को एक ही तत्त्व सिद्ध करने का प्रयास करते हुए प्रकरण के अन्त में पृ० ८३६ पर लिखा है–"The consciuos unity of the three, God, Soul and Nature, in his own consciousness is the sure foundation of his perfection and his realisation of all harmonies : this will be his highest and widest state, his status of a divine consciousness and a divine life and its initiation, the starting-point for his entire evolution of his self-knowledge, world-knowledge, God knowledge. यहां तीनों तत्त्वों के एकत्व को ज्ञानपूर्वक स्वीकार करने को पूर्णता की प्राप्ति अर्थात् दिव्य जीवन के लिए अनिवार्य बताया

गया है ।

* ''हमको भगवान् की अनुभूति होती है और हम भगवत् स्वरूप बन भी जाते हैं, इस कारण कि हम अपनी प्रच्छन्न अन्तरतम सत्ता में वही हैं।'' (योग समन्वय, द्र० श्री अरविन्द कर्मधारा, अंक ३, १९९९, पृ० ३०)

* आत्मन् ही परम सत्ता है, वह कोई सामान्य सत्ता नहीं है; 'आत्मन्' शब्द का अभिप्राय है सचेतन मूलभूत अस्तित्व जो सर्व में एकम् विद्यमानता है । आत्मन् और जीवात्मा में कोई भेद नहीं है।'' (श्री अरविन्द के पत्र, द्र० वही, पृ० ३०)

* ''भगवान् ने सृष्टि की रचना सृजनभूत आनन्द के लिए की है। उसने अपनी परमसत्ता में से ही विश्व का निर्गमन बहिर्व्यक्त जीवनयापन के आनन्द हेतु किया है ।'' (वही, पृ० ३१)

* ''प्रकृति इन्द्रियग्राह्य रूप में प्रकृति है परन्तु यथार्थतः वह भगवान् ही है । मनुष्य भगवान् का प्रकृति से प्रच्छन्न स्वरूप है ।'' (वही, पृ० ३१)

* ''यह प्रभु विश्व से पर है, अनन्त है, विश्व रूप भी है । वह व्यक्ति रूप भी है, और फिर भी व्यक्तित्व से रहित है। वह सान्त है और अनन्त है । स्वयं को सीमा में बद्ध करनेवाला है और फिर भी वह सीमातीत है । वह एक है और साथ साथ अनेक भी है ।'' (योग और उसके लक्ष्य, पृ० ७)

* Man is God hiding himself from Nature so that he may possess her by struggle, insistance, violence and surprise. God is universal and transcendent Man hiding himself from his own individuality in the human being." (Mystery of Life, All India Magazine, Feb-Mar. 1999, p. 11) अर्थात् मनुष्य ईश्वर है जो अपने आपको प्रकृति से छुपा रखता है, ताकि वह उसे (प्रकृति को) संघर्ष, आग्रह, हिंसा और आश्चर्य से पा सके । जबकि ईश्वर एक ऐसा सार्वत्रिक एवं अनुभवातीत मनुष्य है जो मनुष्य में विद्यमान अपने व्यक्तित्व से अपने को छुपा रखता है ।

* But this world is Brahman, the world is God, the world is Satyam, the world is Ananda." अर्थात् यह विश्व ब्रह्म है, ईश्वर है, सत्य है, आनन्द है । (वही, पृ० १२)

* "The world is a movement of God in His own being; we are the centres and knots of divine consciousness which sum up and support the processes of His movement. The world is His play with His own self-conscious delight, He who alone exists, infinite,

free and perfect; we are the self-multiplications of that conscious delight, thrown out into being to be His playmates. The world is a formula, a rhythm, a symbol-system expressing God to Himself in His own consciousness, –it has no material existence but exists only in His consciousness and self-expression." (वही, पृ० १४) यह अद्वैतवाद नहीं तो और क्या है? जीव और प्रकृति दोनों के मौलिक अस्तित्व को नकारा गया है ।

* "The Omniscient has plunged itself into Nescience, the All-Conscious into Inconscience, the All-Wise into perpectual ignorance." (वही, पृ० २७) अर्थात् सर्वज्ञ ब्रह्म स्वयम् अविद्या-अज्ञान और जड़त्व से ग्रसित हुआ है ।

* "The infinite multiplicity of the One and the eternal unity of the Many are the two realities or aspects of one reality on which the manifestation is founded." (वही, पृ० ३५)

* ''वास्तव में न तो कोई बद्ध है और न कोई मुक्त । और न किसी को मुक्त होने की आवश्यकता ही है; सब कुछ केवल भगवान् की लीला है । परब्रह्म का अभिव्यक्त होने का खेल है ।'' (भागवत मुहूर्त, पृ० ३४)

* वास्तव में तुम पहले से ही परब्रह्म हो और सदा वही थे और सदा वही रहोगे ।'' (वही, पृ० २०)

* ''तुम परब्रह्म बन सकते हो; तुम परब्रह्म को जान नहीं सकते। परब्रह्म बनने का अर्थ है आत्मचेतना के द्वारा परब्रह्म में लौट जाना, क्योंकि तुम पहले से ही 'वह' (तत्) हो ।'' (वही, पृ० ३३)

* ''इस योग में हमें स्वयं के लिए ही आनन्द सिद्ध करना नहीं है, बल्कि भागवत् आनन्द–ईसा के स्वर्गीय साम्राज्य या हमारे सत्ययुग–को पृथ्वी पर उतार लाना है । हमें व्यक्तिगत प्रकार से मोक्ष की कोई आवश्यकता नहीं है । क्योंकि आत्मा तो नित्य मुक्त ही है। और बन्धन तो एक भ्रम है । हम लोग बन्धन में पड़ने का एक खेल खेल रहे हैं। हम सच में बन्धन में पड़े हुए नहीं हैं । जब भी प्रभु की इच्छा होती है, तब हम मुक्त हो सकते हैं ।'' (योग और उसके लक्ष्य, पृ० १, २)

* ''कई बार प्रभु हमारे अन्दर रहकर मन के द्वारा अज्ञान का भोग करना चाहता है । आनन्द और शोक, सुख और दुःख, पुण्य और पाप, भोग और त्याग के द्वन्द्वों का रस लेना चाहता है ।'' (वही, पृ०२)

* ''जब जब प्रभु अज्ञान का, द्वन्द्वों का, संघर्ष का, क्रोध एवं आंसुओं का, दुर्बलता एवं स्वार्थ का, तामसिक एवं राजसिक सुखों का–अगर संक्षेप में कहना हो तो कलि की क्रीड़ा का भरपेट आनन्द उठाना

चाहता है, तब तब वह भारत में रही ज्ञानज्योत को मन्द कर देता है, भारत भूमि को दुर्बल कर देता है, उसे शिथिल कर देता है जिससे कि वह उसके स्वयं के अन्तरात्मा में निवृत्त हो जाय और प्रभु की लीला की इस गति में विघ्न रूप न बने ।" (वही, पृ० ३)

* "प्रभु एक है, मगर वह अपने एकत्व से कुछ बंधा हुआ नहीं है ।" (वही, पृ० ४३)

* ईश्वर एवं जगत् के अभेद को दर्शाते हुए श्री अरविन्द लिखते हैं– "The Lord and the world, even when they seem to be distinct, are not really different from each other; they are one Brahman." (Isha Upanishad, p. 16) अर्थात् भले ही ऐसा प्रतीत होता हो कि ईश्वर और जगत् अलग अलग हैं । मगर वास्तव में वे एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं । वे दोनों एक ब्रह्म ही हैं । (स्वामी दयानन्द अपने 'भ्रान्ति निवारण' ग्रन्थ में लिखते हैं कि "सब जगत् को ब्रह्म मानना, तथा ब्रह्म को जगद्रूप समझना यह हिन्दुओं की बात होगी, आर्यों की नहीं । हम लोग आर्यावर्त्तवासी ब्राह्मणादि वर्ण और ब्रह्मचर्यादि आश्रमस्थ ब्रह्मा से लेकर आज पर्यन्त परमेश्वर को वेदरीति से ऐसा मानते चले आये हैं कि वह शुद्ध, सनातन, निर्विकार, अज, अनादि स्वरूप, जगत् के कारण से कार्यरूप जगत् का रचन, पालन और विनाश करनेवाला है । और 'हिन्दू' उसको कहते हैं कि जो वेदोक्त सत्यमार्ग से विरुद्ध चले ।")

* प्रकृति को चेतन बताते हुए श्री अरविन्द लिखते हैं–"Prakriti in the material world seems to be Jada, but this too is only an appearance. Prakriti is in reality the conscious power of the spirit." (On Yoga, Book Two, Tome One, 1958, p. 243) अर्थात् भौतिक जगत् में ऐसा लगता है कि प्रकृति जड़ है । मगर ऐसा लगना केवल प्रतीतिमात्र ही है । प्रकृति वास्तव में आत्मा की चेतन शक्ति है ।

* ध्यान का विषय क्या होना चाहिए ? इस प्रश्न के उत्तर में श्री अरविन्द लिखते हैं–"But if you ask me for an absolute answer, then I must say that Brahman is always the best object for meditation or contemplation and the idea on which the mind should fix is that of God in all, all in God and all as God. It does not matter essentially whether it is the Impersonal or the Personal God or, subjectively, the One Self. But this is the idea I have found the best, because it is the highest and embraces all other truths, whether truths of this world or of the other worlds or beyond all phenomenal existence, - "All this is the Brahman." (Ibid, p. 696) अर्थात् ध्यान ब्रह्म का होना चाहिए । फिर यह ब्रह्म सगुण हो, निर्गुण हो या केवल एक

आत्मन् हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ......ध्यान करते समय मन इस विषय पर केन्द्रित रहना चाहिए कि सब में ब्रह्म है, सब कुछ ब्रह्म में है, और सब कुछ ब्रह्म ही है।

जीवात्मा का कर्म-स्वातन्त्र्य :

'Essay on the Superman' में श्री अरविन्द ने लिखा है– "Learn thou to be the instrument of God. Let thyself be as a leaf in the tempest, as a sword that strikes and the arrow that leaps to its target. The sword does not choose where it shall strike, the arrow does not ask whither it shall be driven." अर्थात् ''अपने आपको परमात्मा का साधनमात्र समझो। तुम्हारी स्थिति आंधी में उड़ते पत्ते, काटने वाली तलवार या अपने लक्ष्य की ओर जाते तीर के समान है। तलवार यह निर्णय नहीं करती कि उसे किसको काटना है, और न तीर ही अपने लक्ष्य को निर्धारित करता है।''

इस पर आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् श्री स्वामी विद्यानन्द सरस्वती जी ने अपने 'अध्यात्म मीमांसा' आदि ग्रन्थों में इस प्रकार लिखा है–''यदि श्री अरविन्द की बात ठीक हो तो मनुष्य का सारा दायित्व ही समाप्त हो जायेगा। फिर तो संसार में भला-बुरा जो कुछ भी हो रहा है उस सब के लिए परमेश्वर ही उत्तरदायी होगा। सारी न्यायव्यवस्था ही चौपट हो जायेगी। परन्तु यह यथार्थ के विपरीत है। जीवात्मा परमात्मा के हाथ का खिलौना नहीं है। वह इच्छा, सुख-दुःख, राग-द्वेष और प्रयत्न आदि गुणों से युक्त चेतन तत्त्व है। अतः उसकी स्वतन्त्र सत्ता है और स्वतन्त्र कर्ता होने के कारण अपने कर्मों के लिए पूर्णरूपेण उत्तरदायी है। वेदादि शास्त्रों में विधि-निषेधात्मक वाक्य जीवात्मा को लक्ष्य करके कहे गये हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् में बताया गया है कि संसारी जीवात्मा फलप्राप्ति के लिए कर्मों का कर्त्ता है। 'गुणान्वयो यः फलकर्मकर्त्ता कृतस्य तस्यैव चोपभोक्ता।' (श्वेता० ५-७) प्रश्नोपनिषद् (४-९) में तो बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है कि यह जीवात्मा पुरुष द्रष्टा, श्रोता, कर्त्ता आदि है। 'एष हि द्रष्टा, स्प्रष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता, मन्ता, बोद्धा, कर्त्ता, विज्ञानात्मा पुरुषः।' आत्मा स्वयं कर्त्ता न होता तो वह भोक्ता भी न होता। विहित कर्मों के अनुष्ठान और निषिद्ध कर्मों के परित्याग का निर्देश होने से स्पष्ट है कि कर्म करने में जीवात्मा स्वतन्त्र है।'' (अध्यात्ममीमांसा, पृ० ६४-६५)

मूर्तिपूजा के पक्ष में :

मूर्तिपूजा के पक्ष में श्री अरविन्द ने लिखा है–"The image to the Hindu is a physical symbol and support of the supraphysical; it is a

basis for the meeting between the embodied mind and sense of man and the supraphysical power, force or presence which he worships and with which he wishes to communicate." (The Foundations of Indian Culture. p. 102) अर्थात् हिन्दू के लिए प्रतिमा अतिभौतिक सत्ता का एक भौतिक प्रतीक एवम् आलम्बन है। मनुष्य का देहबद्ध मन एवम् इन्द्रिय और वह अतिभौतिक बल, शक्ति या उपस्थिति, जिसकी वह पूजा करता है और जिसके साथ वह सम्पर्क स्थापित करना चाहता है–इन दोनों के मिलन के लिए मूर्ति एक आधार का काम करती है।

आगे वे लिखते हैं–"Indain image-worship is not the idolatry of a barbaric or undeveloped mind, for even the most ignorant know that the image is a symbol and support and can throw it away when its use is over." (Ibid. p. 155) अर्थात् भारतीय मूर्तिपूजा बर्बर या अविकसित मन की बुतपरस्ती नहीं है, क्योंकि अत्यन्त अज्ञानी भारतीय भी यह जानते हैं कि मूर्ति एक प्रतीक एवम् अवलम्बन है और इसका उपयोग समाप्त होने पर वे इसे फेंक सकते हैं।

पुराणों के प्रति दृष्टिकोण :

श्री अरविन्द ने पुराणों के बारे में लिखा है–"The Puranas are essentially a true religious poetry, an art of aesthetic presentation of religious truth." (The Foundations of Indian Culture, p. 358) अर्थात् "पुराण मूलतः एक सच्चा धार्मिक काव्य है, अर्थात् वे धार्मिक सत्य के सौन्दर्यात्मक निरूपण की कला है।"

फिर लिखा है–"पुराण, वेद और उपनिषत् के ज्ञान सर्वसाधारण को समझाते हैं, उसकी व्याख्या करते हैं, सविस्तार आलोचना करते हैं, उसे जीवन के छोटे-मोटे क्रिया-कलापों में लगाने की चेष्टा करते हैं और इसीलिए वे हिन्दू धर्म के प्रमाण-ग्रन्थों में गिने जाते हैं। जो वेद और उपनिषद् को भूल पुराण को स्वतन्त्र और यथेष्ट प्रमाण मानते हैं वे भ्रान्त हैं। इससे हिन्दू धर्म का अभ्रान्त और अपौरुषेय मूल ही छूट जाता है और भ्रम तथा मिथ्या ज्ञान को प्रश्रय मिलता है। इससे वेद का अर्थ, साथ ही पुराण का प्रकृत अर्थ लुप्त हो जाता है। पुराण को वेद पर प्रतिष्ठित कर पुराण का उपयोग करना होगा।" (बंगला रचनाएं, पृ० ६४, द्र० 'अरविन्द ने कहा था', पृ० ८५-८६)

अपने बारे में :

श्री अरविन्द ने लिखा है–"मेरे जीवन के बारे में कोई भी मनुष्य नहीं लिख सकता। क्योंकि यह मनुष्य देख सके ऐसा सतह पर का नहीं है।" (श्री अरविन्द, प्रस्तावना, पृ० ९) आगे लिखा है–"मैं अपने स्वयं

के लिए कुछ भी नहीं कर रहा हूं। क्योंकि मुझे स्वयं के लिए किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है—मुक्ति के लिए या फिर अतिमानस रूपान्तर के लिए । मैं जो अतिमानस रूपान्तर के लिए साधनाकर रहा हूं, तो यह इसलिए कि पृथ्वी की चेतना के लिए यह वस्तु करना आवश्यक है ।'' (वहीं, पृ० १२)

अपने पूर्णयोग के लक्ष्य के बारे में उन्होंने लिखा है—''मैं ऊर्ध्वलोक का कोई ऐसा प्रकाश इस जगत् में लाना चाहता हूं, कोई ऐसी शक्ति को इस पृथ्वी पर सक्रिय करना चाहता हूं कि जिससे मानव प्रकृति में भारी रूपान्तर-परिवर्तन हो जायेगा । वह ऐसी कोई दिव्य शक्ति होगी जो आज तक पृथ्वी पर कभी प्रकट रूप में सक्रिय नहीं हुई है ।'' (Sri Aurobindo स्वदेशागमन Centenary Souvenir, पृ० १५)

श्री अरविन्द के पास एक शिष्य ने उनके अर्थात् श्री अरविन्द के मराठी जीवनचरित्र लिखने के इच्छुक एक लेखक को मदद करने की प्रार्थना की । श्री अरविन्द ने उत्तर में लिखा—"I don't want to be murdered by my own disciples in cold print." (Evening Talks, p. 131) अर्थात् 'मैं नहीं चाहता कि मेरे अपने ही शिष्यों के हाथ ठण्डी छपाई में मेरी हत्या हो ।'

श्री अरविन्द ने अपनी अतिमनस के अवतरण की साधना को वैदिक ऋषियों की साधना-सिद्धि से भी आगे की सिद्धि बताते हुए 'On Yoga' (Book Two, Tome One] 1958) में कुछ इस प्रकार की बातें लिखी हैं—''वैदिक ऋषियों ने कभी भी पृथ्वी के लिए अतिमनस को प्राप्त नहीं किया था, या तो उन्होंने शायद कभी (इस दिशा में) प्रयास ही नहीं किया था । उन्होंने व्यक्तिगत रूप में अतिमनस स्तर पर पहुंचने का प्रयास किया था, मगर वे उसे नीचे तक ले आकर उस पृथ्वी की चेतना का स्थायी हिस्सा नहीं बना पाये। यहां तक कि उपनिषदों में भी ऐसे स्थल पाये जाते हैं, जहां ऐसे संकेत देखने को मिलते हैं कि सूर्य (अतिमनस का प्रतीक) के द्वारों में से निकल पाना एवं साथ में पार्थिव शरीर को भी बनाये रखना असम्भव है । इसी विफलता के कारण ही भारत में आध्यात्मिक प्रयत्न की सर्वोच्च स्थिति मायावाद में हुई है ।'' ("The Vedic Rishis...Mayavada." p. 109)

''मैंने वेद या उपनिषद् से विचार वहीं लिया था । और इस प्रकार की कुछ बातें उनमें हैं या नहीं, यह भी मैं नहीं जानता। मैंने जो अतिमनस की अनुभूति की है वह सीधी अनुभूति थी। वह मुझे किसी ग्रन्थ आदि से प्राप्त हुई चीज नहीं थी । यह तो बाद में मुझे उपनिषद् तथा वेद में इसको समर्थन देती हुई बातें देखने को मिलीं।'' (Ibid] p. 83)

ऐसा नहीं कि केवल एक मैंने ही ऐसा किया है, जो वैदिक ऋषि नहीं कर पाये थे । चैतन्य एवम् अन्य लोगों ने भी भक्ति की ऐसी उत्कटता

प्राप्त की थी कि जिसका उल्लेख वेदों में कहीं पर भी देखने को नहीं मिलता । ऐसे तो कई अन्य उदाहरण दिये जा सकते हैं। आध्यात्मिक अनुभवों की मर्यादा भूतकाल को क्यों बनाना चाहिए ?'' (Ibid, p. 98)

आचार्य अभयदेव जी की राय :

कांगड़ी गुरुकुल के पूर्व आचार्य श्री अभयदेव जी श्री अरविन्द के अनन्य भक्त व प्रशंसक थे । उन्होंने जब प्रथम बार श्री अरविन्द का 'एसेज ऑन गीता' ग्रन्थ पढ़ा तो इतने प्रभावित हुए कि उस ग्रन्थ को धरती पर रखकर उसे सात बार प्रणाम किया । बाद में वे श्री अरविन्द को मिले और प्रतिवर्ष चार मास वहीं पाण्डिचेरी आश्रम में साधना हेतु जाने लगे । उन्होंने श्री अरविन्द के वेद विषयक ग्रन्थों एवम् उनके स्वामी दयानन्द विषयक निबन्धों का हिन्दी अनुवाद किया। श्री अभयदेव जी के पिता जी आर्यसमाजी थे, और वे अखिल भारतीय शुद्धि के मन्त्री भी रहे थे । वे गौरव के साथ सुनाया करते थे कि सन् १९०५ में काशी की कॉन्फ्रेंस के अवसर पर उन्होंने श्री अरविन्द को शुद्धि सभा के सदस्य बनाया था । उनके हस्ताक्षर अपने रजिस्टर में कराये थे । (वेदवाणी, नव०-दिस० १९५७ अंक, पृ० ४५)

श्री अभयदेव जी ने आर्यसमाज कर्णनगर (श्रीनगर) में भाषण देते हुए कहा था कि स्वामी दयानन्द एवं श्री अरविन्द में निम्न चार बातों में समानता देखी जा सकती है–

* दोनों ने ही भारतीय संस्कृति का मूलस्त्रोत वेद को माना है। वे खोज में वेद तक गये हैं, और वेद को पहचाना है। उपनिषदों पर ही नहीं अटक गये हैं ।

* दोनों ने ही योग का आश्रय लिया ।

* दोनों राष्ट्रीयता के उपासक थे, यद्यपि उनकी राष्ट्रीयता संकुचित नहीं थी ।

* दोनों आध्यात्मिकता को सर्वोपरि मानते थे ।

इस भाषण में श्री अभयदेव जी ने तो यहां तक कह दिया कि ''आर्यसमाज को अभी बहुत कुछ करना है, उसका कार्य शेष है; और उस कार्य के लिए आर्यसमाज को अपने पथ प्रदर्शक के रूप में श्री अरविन्द को अपना लेना बहुत उपयोगी हो सकता है ।'' (वही, पृ० ४७-४८) श्री अभयदेव जी ने अपनी 'यज्ञ और योग' पुस्तक में श्री अरविन्द की योग-साधना-पद्धति, उसकी पातञ्जल आदि प्राचीन योगपद्धतियों से समानताएं-असमानताएं व श्रेष्ठताएं, योग चिकित्सा आदि के बारे में अपने विचार और अनुभव आदि प्रकट किये हैं ।

आर्यविद्वान् म०म० श्री विश्वश्रवा व्यास जी का मन्तव्य :

म०म० श्री विश्वश्रवा व्यास जी ने अपने ''ऋग्वेदमहाभाष्यम्'' में पृ० २१६ पर श्री अरविन्द के बारे में अपना मन्तव्य इस प्रकार प्रकट किया है–

''अरविन्द जी के अर्थ करने की शैली से पता चलता है कि अरविन्द जी मन्त्रों को ऋषिकृत मानते हैं, ईश्वरकृत नहीं । ऐसा विचार अनार्यों का है । आर्य सदा से वेदों को अपौरुषेय मानते चले आ रहे हैं। अरविन्द जी ने स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के वेदभाष्य की प्रशंसा करके अपने अवैदिक विचारों की रक्षा कर ली । यह अरविन्द जी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के वेदभाष्य के प्रशंसक हैं इस भ्रम में पड़कर आर्य विद्वान् अरविन्द्र जी के प्रशंसक बन गये, और अरविन्द के असत्य सिद्धान्तों और असंगत वेदव्याख्या की उपेक्षा कर दी । ये अरविन्द महोदय न केवल मन्त्रों को मनुष्यकृत मानते हैं, प्रत्युत परम्परागत निर्वचनों को भी काल्पनिक मानते हैं । अरविन्द जी स्वयम् ऋषि अपने को मान बैठे, पर कहीं भी उन्होंने स्वामी दयानन्द जी को ऋषि नहीं लिखा । अन्तर्याग और बहिर्याग का ढोंग रच कर वेदमन्त्रों के आध्यात्मिक आदि अर्थों की अवहेलना की और शब्दों के अनेक निर्वचनों को हेय ठहराया । इनके सम्प्रदाय के वेदभाष्य जो सिद्धाञ्जन भाष्य कपालि शास्त्री का है, उसमें बिना नाम लिये महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य का खण्डन किया है । जैसे महर्षि ने ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र 'अग्निमीळे' में यज्ञस्य इस षष्ठि विभक्ति का अन्वय सब के साथ लगाया है, सिद्धाञ्जन भाष्य में इसका उपहास किया है ।''

स्वामी विद्यानन्द जी 'विदेह' की माता जी से भेंट :

आर्यसमाज के एक अन्य प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् स्व० स्वामी विद्यानन्द 'विदेह' १४ फरवरी १९६२ के दिन पाण्डिचेरी के अरविन्द आश्रम में श्री माता जी से उनके एक पत्र द्वारा निमन्त्रण पर उनसे मिले थे । उस समय हुए वार्तालाप का वर्णन जो स्वयं स्वामी विद्यानन्द विदेह जी ने किया था, वह 'वेदवाणी' मासिक के पौष सं० २०३५ वि० के अंक में पृ० १५-२० पर विस्तृत रूप से प्रकाशित हुआ था। यह वार्तालाप का पूरा वर्णन पढ़ने योग्य है, जिसमें श्री विदेह जी ने कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण मुद्दे उठाये थे कि जिनके समुचित उत्तर देने में ऐसा प्रतीत होता है कि श्री माता जी को पर्याप्त असुविधा अनुभव हुई होगी । उस वार्तालाप के दौरान श्री विदेह जी द्वारा उठाये गये कुछ मुद्दे संक्षेप में इस प्रकार के थे–

* आश्रम में से परमात्मा को निकाल बाहर कर दिया गया है। आश्रमवासियों के हर घर में श्री अरविन्द और श्री माँ के चित्रों की पूजा होती है । परमात्मा शब्द तक किसी की जबान से उच्चरित होता हुआ मैंने नहीं सुना ।

* श्री अरविन्द को अवश्य यह मालूम था, और आपको भी यह अवश्य मालूम है कि उनके और आपके अनुयायियों ने ईश्वर को

सिंहासनच्युत करके उसके स्थान पर श्री अरविन्द को आपको सिंहासनारूढ़ कर रखा है ।

* यहां आपके अनुयायियों में और आपके चारों ओर जो खुला पाखण्ड व्याप रहा है, उसके लिए कौन जिम्मेदार है ? नित्य प्रातः छह बजे आपके ये शतशः भक्त गली में खड़े होते हैं, और आप अपने झरोखे से उन्हें दर्शन देती हुई अपनी ब्रह्मरूपता प्रकट करती हैं; यह क्या तमाशा है ?

* यह सब तान्त्रिक और हठयोग की क्रियाओं का परिणाम है। यदि आप राजयोग का आश्रय लेतीं तो निश्चय ही आपकी श्रवणशक्ति तथा दर्शनशक्ति अक्षुण्ण बनी रहती । इन्हीं क्रियाओं के परिणामस्वरूप श्री अरविन्द भी अपने अन्तिम वर्षों में आपकी तरह ही एक कमरे में बन्द हो गये थे, क्यों कि उनकी दर्शनशक्ति और श्रवणशक्ति ने उनका साथ छोड़ दिया था ।

* आपके ये लोग श्री अरविन्द की कब्र पर सिर रखकर आंसू बहाते हैं। और अरविन्द का नाम लेकर ज्योति की भिक्षा मांगते हैं । इसे आप बन्द क्यों नहीं करती हैं ? ......कब्रपूजा ईसाइयत और इस्लाम में भले ही विहित हो, हिन्दुओं में अविहित है ।

* श्री अरविन्द ने भविष्यवाणी की थी कि पाकिस्तान अपने निर्माण की तिथि से १५ वर्ष के भीतर समाप्त हो जायेगा । आगामी १४ अगस्त को १५ वर्ष की अवधि पूरी हो जायेगी । क्या आप समझती हैं कि १४ अगस्त १९६२ तक पाकिस्तान का भारत में पूर्ण विलय हो जायेगा ?

* मृत्युदण्ड से मुक्त किये जाते ही श्री अरविन्द ब्रिटिश हिन्दुस्तान से भागकर यहां फ्रेंच इलाके में आकर बसे । मुझे लगता है, ऐसा उन्होंने ब्रिटिश सरकार की सम्भावित कठोरताओं से बचने के लिए किया था । क्या यह कदम कायर कदम नहीं था ?

उपसंहार :

इस प्रकार हम ने श्री अरविन्द के जीवन तथा उनके चिन्तन सम्बन्धी कुछ बातें यहाँ संक्षेप में पाठकों के विचार हेतु प्रस्तुत की हैं। सर्व विद्वान् महानुभावों व सुविज्ञ पाठकों से नम्र निवेदन है कि अल्पज्ञता तथा असावधानी से इस लेख में कोई त्रुटि रह गई हो तो कृपया हमें सूचित करें । प्रमाणयुक्त सत्य बात को हम सहर्ष स्वीकार करेंगे और अपने ज्ञान का संशोधन भी । मेरे विचार से श्री अरविन्द के ग्रन्थों का स्वाध्याय हमारे लिए अनेक दृष्टि से लाभप्रद सिद्ध हो सकता है । विशेष रूप से हमारे आर्यसमाजस्थ विद्वानों एवं लेखकों को श्री अरविन्द के साहित्य का ठीक से अध्ययन कर, उसका उचित लाभ उठाना चाहिए और उस पर अपनी गम्भीर मीमांसा भी प्रकट करनी चाहिए । ❑❑❑

१२-२३ टाउनशिप, पो० नर्मदानगर,
भरुच, गुजरात ३९२०१५)

सत्याग्रह समन्वय समझौता ?

–भावेश मेरजा

पिछले दिनों मैंने 'वेदप्रकाश' (मार्च २००३), 'आर्यजगत्' तथा 'परोपकारी' आदि आर्य पत्रिकाओं में श्री अरविन्द घोष के सम्बन्ध में लेख दिये। ये लेख कई पाठकों को बहुत ही पसन्द आये और उनकी प्रशंसा में मुझे कई प्रबुद्ध पाठकों के पत्र भी प्राप्त हुए। मगर साथ में यह सम्भावना भी स्वाभाविक ही थी कि श्री अरविन्द चेतनासमाज (दिल्ली) के श्रीमान् डॉ० ज्ञानचन्द्र जी जैसे कई श्री अरविन्द भक्तों को ये लेख पसन्द न भी आए।

मेरे इन लेखों का उद्देश्य तो केवल यही था कि आर्य पाठकों को श्री अरविन्द के जीवन, कार्य एवं दर्शन का सम्यक् परिचय संक्षेप में प्राप्त हो, और वे उन बातों पर अधिक विचार कर सकें। इन लेखों में यथासम्भव आवश्यक पुस्तकों के प्रमाण देकर यह भी दर्शाया गया था कि श्री अरविन्द के जीवनचरित्र आदि में हमें ऐसी कई सृष्टिक्रम विरुद्ध घटनाएं पढ़ने को मिलती हैं, जो न केवल चमत्कारपूर्ण, रहस्यमय कोटि की ही हैं, बल्कि संसार में भ्रम और अन्धविश्वास को प्रश्रय व बढ़ावा देने वाली भी हैं।

इस युग के परम वेदज्ञ महर्षि दयानन्द ने युक्ति, तर्क एवं वेदों के प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि मूर्तिपूजा, अवतारवाद, सर्वब्रह्मवाद आदि बातें सर्वथा अवैदिक एवं त्याज्य हैं। मगर श्री अरविन्द इन बातों के पक्षधर हैं, और अपनी विशिष्ट लेखन शैली में इनकी अभिनव व्याख्याएं प्रस्तुत कर उनको एक प्रकार से सुरक्षा ही प्रदान करते हैं। इन सब के कारण पनपे गुरुडम तथा व्यक्तिपूजा के दुष्परिणाम आज हमारे सामने हैं–सृष्टिकर्ता परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना के स्थान पर आज उनके भक्त श्री अरविन्द तथा श्री माता जी के चित्रों तथा उनकी समाधियों की जड़ पूजा में लिप्त हैं, उन मृत व्यक्तियों की कृपा व आशीर्वाद की अभिलाषा करते हैं। और वेदप्रचार या वैदिक ग्रन्थों के शास्त्रीय अध्ययन-अध्यापन में, वैदिक संस्कारों के पुनरुद्धार, पाखण्ड-खण्डन व अन्धविश्वास-निर्मूलन आदि कार्यों में उनको कोई विशेष रुचि नहीं है। अगर गम्भीरता से सोचें तो यह और कुछ नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अध:पतन ही है। परम देव परमात्मा से विमुख होकर किसी ऐतिहासिक मरणधर्मा व्यक्तियों को समर्पित होना, उन्हें परमात्मा तुल्य समझना, और उनकी कृपा की सदैव वाञ्छा

करते रहना अपने आप को धोखा देना है ।

धार्मिक एवम् आध्यात्मिक क्षेत्रों में फैले जिन भ्रमों, अन्धविश्वासों, मिथ्या कल्पनाओं तथा चमत्कारिक बातों से संसार को मुक्त कराने के लिए महर्षि दयानन्द ने जीवन पर्यन्त संघर्ष किया, आज उन्हीं भ्रम और अन्धविश्वासों की शाब्दिक घटाटोप से नूतन व्याख्याएं प्रस्तुत कर कभी समन्वयवाद के नाम से तो कभी ऑकल्ट, गुह्य ज्ञान या रहस्यवाद के नाम से आर्यसमाज को यह परामर्श दिया जा रहा है कि वह खण्डन कार्य से अपने आप को विरत कर लें ।

ऐसे ही श्री अरविन्द की दार्शनिक विचारधारा भी वैदिक विचारधारा से (अर्थात् ईश्वर, जीव, प्रकृति के त्रैतवाद से) न केवल भिन्न ही है, बल्कि कई दृष्टियों से प्रतिकूल भी है । महर्षि दयानन्द की दृष्टि में वेद एवं वैदिक षड्दर्शन तीन तत्त्वों को (ईश्वर, जीव, प्रकृति को) पृथक्-पृथक्, अनादि, अनुत्पन्न, नित्य प्रतिपादित करते हैं, मगर श्री अरविन्द की दृष्टि में **केवल ब्रह्म ही एकमात्र मूल सत्ता है । यह सर्वविदित है कि महर्षि दयानन्द के दार्शनिक सिद्धान्त तो वही हैं,** जो षड्दर्शनकारों द्वारा सूत्रबद्ध किये गये हैं । उनका अपना कोई स्वतन्त्र दार्शनिक मत नहीं है । इसलिए अगर हमें श्री अरविन्द के 'दिव्य जीवन' आदि ग्रन्थों में कोई बात वेद या षड्दर्शन प्रतिपादित सिद्धान्तों से विरुद्ध दिखलाई पड़ती है तो स्पष्ट है कि ऐसी बात एक आर्यसमाजी को कभी भी मान्य नहीं हो सकती ।

अगर तथाकथित समन्वयवाद ही महर्षि दयानन्द को वाञ्छनीय होता तो वे शास्त्रार्थ आदि कार्यों में प्रवृत्त न रहते, और न ही सत्यार्थप्रकाश का समीक्षात्मक उत्तरार्ध लिखते । और फिर सम्भवत: उन्हें विष भी न पीना पड़ता । श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द तथा श्री अरविन्द आदि कई महापुरुषों की तरह समन्वयवादी बनकर एक प्रकार की निर्विघ्न, सर्वजनप्रिय एवं संसार, सत्कार, सभर जिन्दगी ही जी लेते । मगर नहीं, वे आजीवन सत्य सनातन वैदिक सिद्धान्तों की प्रस्थापना एवम् अवैदिक मिथ्या मतों के खण्डनकार्य में अहर्निश लगे रहे ।

अत: मेरा विनम्र निवेदन यही है कि श्री अरविन्द के उत्तम व वैविध्यपूर्ण साहित्य का अध्ययन करते समय पाठकों को पर्याप्त सावधानी वर्तने की भी आवश्यकता है । किसी साहित्य में रोचकता होना या पाठकों के मानस पर भाषीय प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता होना एक बात होती है, और उसमें पाठकों की ज्ञानवृद्धि कराने की या सच्चा दिशा निर्देश एवं तत्त्वबोध कराने की क्षमता होना भिन्न बात होती है । इसलिए कोई चाहे ऑकल्ट, गुह्य ज्ञान या रहस्यवाद के

नाम से ही अपनी बात क्यों न रखे, हमें उसे सत्यार्थप्रकाश, व्यवहारभानु, स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश, आर्योद्देश्यरत्नमाला आदि ग्रन्थों में महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट सत्य-असत्य की पांच कसौटियों पर परखनी ही होगी ।

महर्षि निर्दिष्ट सत्य-असत्य की ये पांच कसौटियां एकपक्षीय नहीं हैं, बल्कि सार्वभौम हैं, तीनों कालों में मानने योग्य हैं । सत्य-असत्य के विवेक के लिए इन पांच कसौटियों का कोई विकल्प नहीं है । और जब महर्षि दयानन्द ने स्वयम् अपने ग्रन्थों को भी उक्त पांच कसौटियों से ऊपर नहीं माना हो, बल्कि उनके आधार पर परखकर पढ़ने को कहा हो, तब किसी अन्य व्यक्ति विशेष के ग्रन्थों व मन्तव्यों को उन कसौटियों के अपवाद हम कैसे मान सकते हैं ? अतः समन्वयवाद के नाम पर मिथ्या बातों की वकालत करना, या 'वेद अनेकार्थी हैं' अथवा 'उनमें एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति है'–ऐसी बातों की आड़ में महर्षि दयानन्द प्रस्थापित सुस्पष्ट वैदिक मन्तव्यों से विपरीत बातों को आर्य चिन्तन में समाविष्ट कराने की चेष्टा करना सर्वथा अनुचित ही माना जायेगा ।

महर्षि दयानन्द ने तो स्पष्ट लिखा है–

(१) "**वेदेषु सर्वा विद्याः सन्त्याहोस्विन्नेति ? अत्रोच्यते–सर्वाः सन्ति मूलोद्देशतः ।**" (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ब्रह्मविद्याविषयः) अर्थात् वेदों में Root principles of all the sciences हैं ।

(२) "सारी विद्याओं के अधिकरण वेद हैं । अर्थात् सारी विद्याओं के मूल तत्त्वों का दिग्दर्शन मात्र वेद में हैं । ......अब कोई कहे कि ईश्वर ने सब विद्याओं के मूल तत्त्व ही क्यों प्रकाशित किए, और साद्यन्त विद्या और कला का विवरण क्यों नहीं प्रकाशित किया ? तो उसमें मेरा कहना है कि जैसे ईश्वर ने मनुष्यमात्र के बुद्धि-व्यापार का, उसी तरह बुद्धि-उन्नति का भी अवकाश रखा है ।" (पूना प्रवचन, वेदविषयः)

फिर भी कई लेखकों द्वारा अपने लेखों में जानबूझकर आर्यसमाज के प्रति ऐसे प्रश्न उठाते रहना कि वेदों में पंखा, रेल, जहाज, कम्प्यूटर, क्वार्क्स आदि विज्ञान की नवीनतम खोजें कहां हैं ? बड़ा ही अनुपयुक्त व विचित्र प्रकार की मानसिकता को उजागर करता है । महर्षि दयानन्द ने केवल वेदों को ही पढ़ने को नहीं कहा है । बल्कि उन्होंने वेदों के साथ साथ सृष्टि का अध्ययन व सदुपयोग करने की प्रेरणा भी दी है । इन दोनों के गहन अध्ययन और विवेकपूर्ण सामञ्जस्य से मनुष्य विविध प्रकार के नवीन से नवीनतर उपकारी यन्त्रों व अधिकरण निर्माण करे–इस प्रकार की प्रेरणाएं हमें उनके ग्रन्थों और विशेष रूप से उनके वेदभाष्यों

में यत्र-तत्र सर्वत्र पढ़ने को मिलती हैं ।

डॉ० ज्ञानचन्द्र जी का यह कहना भी बिलकुल कल्पनाप्रसूत ही है कि युग की मांग और हिन्दू मन की तात्कालिक रुग्णता को जान देख कर महर्षि दयानन्द ने 'रहस्यवादी अध्यात्म' तथा 'योगाश्रित गुह्य ज्ञान' सम्बन्धी कुछ बातों पर बुद्ध की तरह मौन रखना श्रेयस्कर समझा । क्योंकि वास्तव में अगर ऐसा होता तो वे सत्यार्थप्रकाश में नवम समुल्लास कभी न लिखते कि जिसमें मुक्ति जैसे अति सूक्ष्म व परोक्ष दार्शनिक विषय की सांगोपांग मीमांसा प्रस्तुत की गई है । वैसे ही उन्होंने अपने यजुर्वेद भाष्य तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि अन्य ग्रन्थों में भी उचित स्थानों पर अध्यात्म, मोक्ष तथा योग विषयक गहन बातों का सम्यक् वर्णन प्रस्तुत किया है । और सत्यार्थप्रकाशक उस महर्षि का तो चिन्तन ही यही रहा था कि–"विज्ञान गुप्त हुए का पुनर्मिलना सहज नहीं है ।" (द्र० सत्यार्थप्रकाश, उत्तरार्ध की अनुभूमिका १) अत: उन पर सर्वाधिक मूल्यवान् विषयों पर मौन रखने का आरोप सर्वथा अप्रामाणिक व निराधार है ।

वेदार्थों के समुचित मानदण्डों से जब यह सुनिश्चित होता है कि महर्षि दयानन्द ने वेदों की सही व्याख्या की है तो फिर उनके आर्ष मन्तव्यों से विरुद्ध बातों को कैसे स्वीकृत किया जा सकता है ? अगर एक ही विषय में दो परस्पर विरुद्ध बातें हों तो दोनों ही बातें तो सत्य नहीं हो सकतीं । इसलिए समन्वयवाद के लोभ या व्यामोह में पड़कर हमें अपने निश्चयात्मक ज्ञान में शैथिल्य लाने की कोई आवश्यकता नहीं है । सत्याग्रह, समन्वय और समझौता के भेद को हमें सदैव ध्यान में रखना होगा । सत्य सिद्धान्तों पर दृढ़ता, आग्रह एवम् आचरण से ही सच्चे समन्वय एवं ऐक्यभाव की आधारभूमि निर्मित होती है ।

लेख के अन्त में हम महात्मा गांधी जी के परम स्नेही, उनको आत्मकथा लिखने के लिए प्रेरित करने वाले, अनासक्त-अपरिग्रही सन्त, गुजरात के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री स्वामी आनन्द (१८८७-१९७६) के प्रकृत विषय सम्बन्धित विचारों को उपयोगी जानकर यहां केवल पाठकों के विचार हेतु उद्धृत करते हैं । उन्होंने लिखा है–

"महापुरुषों के साथ अतिप्राकृत चमत्कारों को आरोपित करने का सिलसिला मानव मन के स्वास्थ्य के लिए तन्दुरुस्त नहीं है । सभी गूढ़वाद ऐसे ही हैं । मृतक को जीवित करने वाले ईसा के चमत्कारों को मानने वाले भावुक ईसाइयों की अपेक्षा, मृतक को किसी के भी द्वारा पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता यह सत्य बात गोतमी को स्पष्ट रूप में समझाने वाले गौतम बुद्ध अधिक समझदार

थे. ऐसा मानने वाली आस्था अधिक तन्दुरुस्त है । रामकृष्ण परमहंस, अरविन्द घोष या रमण महर्षि के बारे में चमत्कारों की बातें फैलाने वाले आधुनिकों को मैं बालिश समझता हूं । (धूर्त भी हो सकते हैं ।) पुराने लोगों की अपेक्षा स्वयं को आधुनिक कहलाने वाले ये लोग अन्धश्रद्धा में अक्सर कम नहीं होते । जड़ श्रद्धा मनुष्य में असहिष्णुता या जनून को प्रेरित करती है, और उसे बुद्धिवाद, तर्क या ज्ञान के प्रति हमलावर बनाती है ।

जिन्दगी एक खुली किताब है । उसे पढ़ने समझने के लिए किसी को गूढ़वाद आयात करने की आवश्यकता नहीं है । और न ही होनी चाहिए । मैंने गूढ़वाद के अच्छे परिणाम आते हुए कभी नहीं देखे ।

मैंने अपने जीवन में एक भी चमत्कार नहीं देखा है । जीवन में और संसार में कभी कभी कुछ घटनाएं ऐसी दिखलाई पड़ती हैं, अनुभव में आती हैं कि जिनका भौतिक विज्ञान वाले, पदार्थविज्ञान वाले स्पष्टीकरण दे सकते हैं वैसा स्पष्टीकरण, आंखों से दिखलाई दे ऐसा हम नहीं दे सकते हैं । मगर मैं नहीं मानता कि ऐसी घटनाएं मनुष्य को उसकी जीवन-यात्रा में या उसके चरित्र, संस्कार, पुरुषार्थ या संघर्ष में किसी प्रकार से उपकारक या कल्याणकारी हो सकती हैं। अनुभव भी ऐसा नहीं है । बल्कि उससे विपरीत ही है । इसलिए मैं सदैव उनका बिलकुल पक्का विरोधी रहा हूं । मेस्मेरिज़्म, प्लान्चेट आदि की तरह मुख्यतः कमजोर मस्तिष्क या व्यक्तित्व वाले या लालची स्त्री-पुरुषों पर उसकी मोहनी चलती है । मजबूत व्यक्तित्व या इच्छा शक्ति वालों पर नहीं । वे लोग ऐसा कहते-कबूलते भी होते हैं । मैं तो अपने ऊपर जो कुछ अजमाना चाहो वह सम्मोहन विद्या आजमाइये, ऐसी चुनौती देता ही रहता हूं । मगर मेरी इस चुनौती को उठाने वाला मुझे कोई नहीं मिला ।

मगर मनुष्यमात्र में, बहुत महान् में भी, सदा एकाध स्क्रू ढीला होता है, जब वे सर्वाधिक दुर्बल कड़ी की तरह रहते हैं । और समझ में न आये, कल्पना न हो सके ऐसा व्यवहार करते हैं । इसी जगह पर ये सब अगमवाद, गूढ़वाद या उनके किनारों को अवकाश मिल जाता है । कुछ भी हो, किन्तु वह स्थिति निर्बलता की है, नोर्मल नहीं है । इसलिए नोर्मल, स्वस्थ मनुष्य या मन:स्थिति वालों के लिए ये सब केवल त्याज्य और हानिकारक ही हैं ।" ('धरती नी आरती', १९९०, पृ० १२४-१२५, नोट : मूल गुजराती से उक्त अंश का हिन्दी अनुवाद हमारा किया हुआ है ।)

–९।१२ टाउनशिप, पो० नर्मदा नगर,
भरुच, गुजरात, ३९२०१५

वेदप्रकाश